आगरा दर्शन



बिशन कपूर

1958

आगरा दर्शन

लेखक

बिशन कपूर, एम. ए.

प्रस्तावना

डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव,
अध्यक्ष, राजनीति एवं इतिहास विभाग,
आगरा कॉलिज, आगरा

प्राक्कथन

डा० विश्वनाथ प्रसाद,
संचालक
हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्रा० लि०
पुस्तक - प्रकाशक एवम् विक्रेता : आगरा

प्रकाशक :
राधेमोहन अग्रवाल,
मैनेजिंग डायरेक्टर,
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० प्रा० लि०, आगरा।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : २३ दिसम्बर, १९५८

मूल्य : दो रुपये

मुद्रक :
नरसिंहनाथ भार्गव, बी.एस-सी.,
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स,
आगरा।

आगरा के उन शिल्पियों को समर्पित

जिन्होंने

ताज की नगरी

को

यश व गौरव प्रदान किया

प्रस्तावना

श्री बिशन कपूर द्वारा लिखित "आगरा दर्शन" को मैंने पढ़ा। आगरा नगर तथा उससे सम्बन्धित शाही इमारतों के रोचक वर्णन को पढ़कर मैं प्रभावित हुआ।

श्री बिशन कपूर होनहार लेखक हैं और मैं आशा करता हूँ कि वह लेखन-कार्य को जारी रखेंगे।

"आगरा दर्शन" पाठकों को मुगलकालीन अनेक महत्त्व-पूर्ण घटनाओं पर भी प्रकाश डालने में सफल होगा जो ताज की नगरी 'आगरा' के प्राचीन इतिहास से भुलाई जा चुकी हैं।

आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव,
एम.ए. पी-एच.डी., डी.लिट्.(आगरा), डी.लिट्(लखनऊ)
अध्यक्ष, राजनीति एवं इतिहास विभाग, आगरा कॉलिज, आगरा

प्राक्कथन

अपने देश की सभ्यता और संस्कृति के केन्द्र-स्थलों में आगरा का अग्रगण्य स्थान है। ऐसा कौन होगा जो भारत में आकर आगरे के ताजमहल और शाही इमारतों को देखे बिना चला जाय? जिसने ताजमहल नहीं देखा वह मानवीय कला का जो एक बड़ा से बड़ा अतीन्द्रिय आनन्दानुभव है उससे वंचित रह गया। ताजमहल मनुष्य के अमूर्तस्नेह का एक अद्भुत मूर्त्तरूप है, जिसमें मानवीय कृति का मानवेतर प्रकृति के साथ एक अनुपम दिव्यतादात्म्य स्थापित हो गया है। यहाँ की इमारतों के ऐसे मनोमोहक दृश्यों ने इस नगर को कुछ ऐसी असाधारण विशेषताएँ प्रदान कर दी हैं जिनका साधिकार वर्णन वही प्रस्तुत कर सकता है जिसमें एक ही साथ कवित्व का रस, शिल्प, संगीत आदि ललित कलाओं की अभिरुचि, इतिहास का अतीतदर्शन, विभिन्न व्यावसायिक कौशलों की अभिज्ञता, भाषा का अनुराग तथा शैली की रोचकता—ये अनेक गुण एक ही साथ विद्यमान हों। इस ग्रन्थ के विद्वान लेखक श्री बिशन कपूर, एम० ए० एक ऐसे ही बहुमुखी-प्रतिभा सम्पन्न गुणवान् पुरुष हैं। इस समय वे पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। पर उनकी साहित्यिक प्रतिभा और लेखन-कला, समाचार चयन और सम्पादन तथा राजनीतिक टीका-टिप्पणियों की सीमा का अतिक्रमण करके हमारे सांस्कृतिक जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में अपने विकास का आधार ढूँढ

लेती है। इस विवरण में उन्होंने बड़े सुन्दर प्रभावशाली और आकर्षक ढंग से आगरे के दर्शनीय स्थानों, भौगोलिक स्थितियों, इतिहास, साहित्य, संगीत, कलाकौशल, विद्यालय, धर्म और समन्वयवादी आदर्श की झांकियाँ प्रस्तुत की हैं। आगरे के एक-एक चप्पे की कहानी जैसे आपकी जानी-सुनी है, अनेक प्रमाणों का हवाला देते हुए आपने यहाँ के इतिहास का जो चित्र अंकित किया है, वह तत्सम्बन्धी जानकारी के लिए एक अनिवार्य साधन सिद्ध होगा।

मेरे अनुरोध के साथ आपने इसमें एक अध्याय आगरे की भाषा पर भी लिखा है जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मध्यकाल में आगरा हिन्दी का एक प्रमुख केन्द्र बन चुका था। इसी कारण अपने प्रचार-कार्य के लिए ईसाई पादरियों को इसी भाषा को अपनाना पड़ा। आगरे के बाहर भी उत्तर में तिब्बत तक, पूर्व में बंगाल तक और दक्षिण में गोआ तथा अन्य सुदूर प्रान्तों तक इसी भाषा को उन्होंने सोलहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक प्रधान माध्यम के रूप में अपनाए रखना आवश्यक समझा। इस सिलसिले में श्री नटराजन के आधार पर बिशनकपूर जी ने श्रीरामपुर से निकलने वाले 'दिग्दर्शन' नामक पत्र का उल्लेख किया है, जिसे ठेठ बँगला भाषा में सन् १८४० ई० में ईसाई मिशन ने प्रकाशित किया था, परन्तु दिग्दर्शन के बंगला संस्करण की एक संख्या में इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख है कि उसका एक हिन्दी संस्करण भी निकलता था, जिसके लेखों की सूची ठीक

वही थी जो उसके बँगला संस्करण में थी। इससे पहले १८१४ में बँगला में और भी पत्रिका निकली हैं। इस प्रकार हमें यह पता चल जाता है कि जनसमाज में अपने भक्त के प्रचार के लिए ईसाई पादरियों को बँगाल में भी हिन्दी की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। इस विवरण को पढ़कर यह बात साफ समझ में आ जायगी कि अकबर के समय में यद्यपि दरबार की भाषा फारसी थी तथापि जन समाज की व्यापक भाषा हिन्दी के अलावा और दूसरी नहीं थी। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी के प्रारम्भिक विकास में आगरे के महत्त्व का अनुमान किया जा सकता है।

आगरा के प्रसिद्ध व्यक्तियों में बिशन कपूर जी ने अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, जसवन्तसिंह, गालिब, नजीर, काशीराज चेतसिंह के पुत्र राजा बलवानसिंह, पंडित मोतीलाल नेहरू, उस्ताद फैयाज खाँ आदि के नामों का गौरवपूर्ण उल्लेख किया है और उनसे सम्बन्धित स्थानों का रोचक वर्णन दिया है।

मेरा विश्वास है कि जो लोग आगरा देख चुके हों उनके लिए और जो लोग अभी नहीं देख सके हों उनके लिए यह पुस्तक समान रूप से उपादेय सिद्ध होगी। जो देख चुके होंगे उन्हें अपने देखे हुए स्थानों और दृश्यों के सम्बन्ध में नई-नई बातें मालूम होंगी। जिनसे उनकी स्मृति में अंकित चित्रों के रंगों में और भी अधिक ताजगी आ सकेगी और वे फिर एक बार बिशन कपूर की दृष्टि से आगरा देखने को उत्सुक हो उठेंगे और जिन लोगों ने अभी आगरा नहीं देखा होगा वे

इसे पढ़कर अपने आगरा देखने की लालसा में अधिक तीव्रता तथा उसकी पूर्ति में अधिक सरसता का अनुभव करेंगे। इसके अतिरिक्त जो आगरे के निवासी हैं उन्हें भी इस पुस्तक में अपने गौरव का एक भावात्मक आधार मिलेगा। अतएव इसके सुयोग्य लेखक श्री बिशन कपूर जी को ऐसी सुन्दर कृति प्रस्तुत करने के उपलक्ष में मैं बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उपर्युक्त तीनों प्रकार के पाठकों में इसका मनोवांछित प्रचार होगा।

२९-११-१९५८

विश्वनाथ प्रसाद
संचालक,
हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

विषय-सूची

: १ :

प्राचीन आगरा की खोज

प्राचीन आगरा के विषय में इतिहासकारों और पुरातत्त्ववेत्ताओं में काफी मतभेद चला आ रहा है। जहाँ एक तरफ इतिहासकारों द्वारा आगरा की उत्पत्ति एवं विकास का मुख्य श्रेय मुस्लिम काल को दिया जाता है, वहाँ दूसरी तरफ पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजें इस नगरी के इतिहास को ईसा से कई शताब्दी पूर्व ले जाती हैं। बाहर से आने वाले पर्यटक और सैलानी जहाँ मुगलकालीन इमारतों को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं, वहाँ दूसरी तरफ इस जिले और नगर में अनायास होने वाली पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजें देश के इतिहासकारों व पुरातत्त्वशास्त्रियों को अचम्भे में डाल देती हैं।

आम तौर पर यह माना जाता है कि आगरा महाभारत काल में कंस का जेलखाना था। यहाँ पर लोगों को सजा व यातना देने के लिए बन्द किया जाता था। किन्तु यह केवल विश्वास पर आधारित है, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

'आगरा गजेटियर' के अनुसार यहाँ की आम जनता का यह विश्वास है कि जिले का पिनाहट नामक कस्बा 'पाण्डव हट' का बिगड़ा हुआ रूप है, और वन गंगा नदी उस स्रोत से उत्पन्न हुई है जो स्रोत अर्जुन के तीर से फूटकर निकला था। इस जिले

का उत्तरी व पश्चिमी भाग सम्भवत: प्राचीन सूरसेन प्रदेश का अंग था, जिसकी राजधानी मथुरा नगरी थी। गजेटियर के अनुसार यह आश्चर्य की बात है कि इस जिले में कोई ऐसा स्थान नहीं, जिसको बुद्धकालीन बताया जा सके। उसके मतानुसार आगरा शब्द की उत्पत्ति स्वयं संदिग्ध है।

आर्य गृह

इस प्रकार के विचार व्यक्त किये जाने के बावजूद भी प्रमुख इतिहासकार टालबाय ह्वीलर ने यह बताया है कि आगरा आर्यों के प्राचीन स्थानों में रहा है। इस आशय का एक नक्शा उनकी पुस्तक में है। आर्यों के जिन पाँच स्थानों का उल्लेख है उनमें आगरा भी सम्मिलित है। सम्भवत: लोगों का इसीलिए यह मत है कि आगरा 'आर्य गृह' का अपभ्रंश मात्र है।

सबसे पहले आगरा के सम्बन्ध में पुरातत्त्ववेत्ता श्री ए० सी० एल० कार्लायल ने खोजपूर्ण रिपोर्ट तैयार की, जिसके अनुसार आगरा नगर व जिले के इतिहास को ईसा से सदियों पूर्व पुराना बताया गया। उनकी रिपोर्ट सन् १८७० में तैयार हुई थी। यद्यपि 'आगरा' शब्द के बारे में वे किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचे, तथापि उन्होंने यह साबित कर दिया कि आगरा कम से कम ईसा की पहली शताब्दी में एक फलता-फूलता हुआ नगर था।

राजा भोज के महल

श्री कार्लायल ने लिखा है, "मुझे सन्देह है कि मेवाड़ के

गहलौत व गुहिला राजपूतों का राज्य आगरा पर था. क्योंकि सन् १८६९ में करीब दो हजार चाँदी के सिक्के यहाँ से प्राप्त हुए हैं। इन पर संस्कृत भाषा में लिखा हुआ था। मैंने स्पष्ट रूप से पढ़ा कि उन पर 'गुहिला श्री' शब्द अंकित था। सम्भवत: ये सिक्के श्री गुहादित अथवा गुहिला राज्य के हों, जिसके संस्थापक गहलौत थे जिनका राज्य ७५० ई० पू० मेवाड़ में फलीभूत हुआ।"

ताजमहल से कुछ ही दूर पर राजा भोज के महल व बाग हैं। इनके बारे में यह धारणा प्रचिलित है कि वे मालवा के राजा भोज के महल हैं। इस सम्बन्ध में राय देते हुए श्री कार्लायल ने लिखा है कि ताजगंज स्थित राजा भोज के महल भी मेवाड़ नरेश गहलौत परिवार के किसी राजा भोज द्वारा निर्मित मालूम पड़ते हैं।

लाल किला या जैन मन्दिर ?

आगरा के ऐतिहासिक लाल किले के बारे में भी यह कहा जाता है कि यह अत्यन्त प्राचीन स्थान रहा है। यहाँ पहले बदलगढ़ का किला था, जिसकी नींव पर अकबर ने आज से चार सौ वर्ष पूर्व लाल पत्थर का किला बनवाया था। इस स्थान के निकट काले पत्थर के खम्भे प्राप्त हुए हैं तथा एक जैन मूर्ति भी मिली थी जो किसी समय में ताज के म्यूजियम में रखी हुई थी। इस सम्बन्ध में श्री कार्लायल इस नतीजे पर पहुँचे कि आगरा के किले के स्थान पर जमुना के किनारे कोई अति प्राचीन जैन मन्दिर रहा होगा जिसे बाद में गिरवाया गया।

रोशनमोहल्ला-स्थित जैन मन्दिर की मूर्ति के बारे में भी लोगों का कहना है कि यह किले की नींव रखते समय अकबर के समय में प्राप्त हुई थी। बहरहाल, लाल किले के स्थान पर जैन मन्दिर होने की धारणा के कथन की काफी पुष्टि होती है, जो विचारणीय है।

श्री कार्लायिल के मतानुसार आगरा जिले में सामोगढ़ के पास बुरहियाना, एत्मादपुर के निकट बुढ़िया का ताल जो बुद्ध ताल का अपभ्रंश बताया जाता है और टूण्डला से तीन मील दूर कसोंधी गढ़ी प्राचीन महत्त्व के स्थान हैं। उनके कथनानुसार प्राचीन आगरा फतिहाबाद के निकट था, जहाँ से जमुना ने धारा बदल कर मार्ग बदल दिया है।

रावतपाड़े का महत्त्व

आगरा के सम्बन्ध में संगठित एवं सामूहिक रूप से शोध कार्य सन् १८७४ में हुआ जबकि आगरा में पुरातत्त्व सोसाइटी की स्थापना हुई। यद्यपि इसमें मुख्यतः अंग्रेज इतिहासकार व पुरातत्त्ववेत्ता ही भाग लेते थे, तथापि आगरा के प्रमुख नागरिक भी इस सोसाइटी की गतिविधि से अलग नहीं रहे। इस सोसाइटी की एक मीटिंग में आगरा के पंडित जगन्नाथजी ने एक महत्त्वपूर्ण लेख पढ़ा, जिसका शीर्षक 'आगरा नगर का ऐतिहासिक विकास' था। उस लेख में उन्होंने आगरा का सिकन्दरा से पोइया घाट तक का सारा क्षेत्र महत्त्वपूर्ण बताया।

पंडित जगन्नाथजी के अनुसार आगरा, भरतपुर-स्थित बयाना राज्य के अन्तर्गत एक परगना मात्र था। उस समय

बयाना में राजा बैन की राजधानी थी। राजा बैन की मृत्यु के बाद उनके पुत्र जमराज ने आगरा को राजधानी वनाया और राज्य का विस्तार किया। यह विस्तृत क्षेत्र 'यमप्रस्त' या इन्द्रप्रस्थ कहलाया जो दिल्ली क्षेत्र में अब भी प्रख्यात है।

पण्डितजी के खोजपूर्ण लेख से पता लगता कि राजा बैन के जमाने में आगरा गाँव रावत जाति के लोगों द्वारा बसाया गया था। इस गाँव के इर्द-गिर्द जब विकास हुआ और मकान आदि वनने लगे तब यह शहर का मुख्य केन्द्र बन गया। जो रावतपाड़ा के नाम से प्रसिद्ध है।

इस सोसाइटी के महत्त्वपूर्ण कागजों व कार्यवाहियों की रिपोर्ट आगरा के पुरातत्त्व कार्यालय में हैं। हालांकि इस संस्था का कार्यालय केवल चार वर्ष तक रहा, फिर भी इस संस्था ने आगरा और उसके आस-पास के क्षेत्रों के बारे में काफी खोजपूर्ण कार्य किये, जिन पर विचार किया जाना चाहिए।

हस्तिनापुर सभ्यता की छाप

इस काल की सब से प्रमुख खोज आगरा पुरातत्त्व कार्यालय के सुपरिटेण्डेण्ट श्री बी० बी० लाल द्वारा की गई। उन्होंने जमुना के उस पार एतमादद्दौला से चार मील दूर पोइया घाट पर, जो कि दयालबाग के ठीक सामने है, भूरी व काली चिकनी मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े प्राप्त करके उस क्षेत्र को हस्तिनापुर की सभ्यता का सिद्ध कर दिया। इसके अतिरिक्त आगरा से १० मील दूर रेणुका क्षेत्र व फतेहपुर सीकरी मार्ग

पर महुग्रर गाँव में भी पुरातत्त्व महत्त्व की खोजपूर्ण सामग्री मिली है, जिससे ग्रार्यकालीन सभ्यता का पता लगता है।

ग्रागरा मथुरा की सीमा पर पहले भी काफी पुरातत्त्व महत्त्व की चीजें मिल चुकी हैं, जिनमें सबसे पुरानी यक्ष की प्रतिमा है, जो मूर्तिकला की दृष्टि से ग्रद्वितीय समझी जाती है। यह मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में रखी हुई है।

गुर्जर-प्रतिहार काल की मूर्तियाँ

श्री बी० बी० लाल की खोज के तुरन्त बाद ही गत वर्ष एत्मादपुर के टेहू गाँव से गुर्जर-प्रतिहार-काल की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ पर विष्णु के १०० मन्दिरों के नष्ट होने की बात भी सामने ग्राई ग्रौर पौराणिक हरनद नामक नदी के बहने का भी पता लगा है, यह नदी सहस्रों वर्षों बाद इस वर्ष बाढ़ के कारण पुनः प्रकट हुई बतायी गई है।



स्वामी कार्त्तिके की मूर्ति : काल प्रथम शताब्दी

इससे पूर्व खेरागढ़ तहसील के कागारौल कस्बे से जैन मूर्तियाँ मिल चुकी हैं जो मथुरा के संग्रहालय में रखी हुई हैं।

मूर्तियों के मिलने तथा पुराने खजाने का पता लगने में

बटेश्वर का आगरा जिले में प्रमुख स्थान रहा है। इतिहासकार टॉड के कथनानुसार आगरा के बाजार में बटेश्वर से प्राप्त कई हजार रुपये के मोती बिक चुके हैं। बटेश्वर का पुराना नाम सौरीपुर है जो राजा सूरसेन की राजधानी रहा है। सौरीपुर के बारे में अब भी यह विवाद है कि यूनानी लेखक मैगस्थनीज द्वारा बताये गये 'केलिसबोरा' नामक स्थान को सौरीपुरी माना जाय अथवा बृन्दावन को।

इतिहासकारों की इस बहस के बावजूद भी बटेश्वर क्षेत्र में ऑपोलोडोटस तथा उत्तर-पश्चिम ईरान की पारथियाई जाति के सिक्के प्राप्त हुए हैं। सौरीपुर नगर श्रीकृष्ण के पितामह सूरसेन ने बसाया था। बटेश्वर में श्रीकृष्ण और उनके पूर्वजों व वंशजों के पर्याप्त चिह्न मिलते हैं। प्राचीन खण्डहरों में दो मोहल्ले पदमन खेड़ा प्रद्युम्न के नाम पर और औंधखेड़ा अनिरुद्ध के नाम पर बसे हुए हैं। ये श्रीकृष्ण के पुत्र और पौत्र थे। जनरल कनिंघम द्वारा खोज करने पर बटेश्वर में १७० मन्दिर मिले, जिनके कारण यमुना पश्चिमवाहिनी



टेहू गाँव से प्राप्त ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य की चतुर्मुखी प्रतिमा

होने के उपरान्त भी दो मील का सीधा मार्ग छोड़कर १८ मील का चक्कर काटती हुई पूर्व स्थान पर आई। इसी स्थान पर कार्तिक पूर्णमासी को बड़ा मेला लगता है, जो १५ दिन तक रहता है।

यद्यपि पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजों ने आगरा का प्राचीन इतिहास महत्त्वपूर्ण एवं गौरवशाली बना दिया है, तथापि जरूरत इस बात की है कि इतिहासकार एवं पुरातत्त्ववेत्ता आगरा के इतिहास का सही मूल्यांकन करें।

नोट—इस लेख की अधिकतर सामग्री हाल की पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजों से ली गई है। —लेखक



: २ :

ताज के आस-पास

विश्व में आगरा की ख्याति जिस ताजमहल के कारण है, उसके आस-पास का क्षेत्र ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रतिवर्ष दसियों हजार विदेशी पर्यटक आगरा में केवल ताज को देखने आते हैं और दाँतों तले उँगली दबाकर ताज की प्रशंसा में गीत गाते चले जाते हैं, पर उन्हें क्या मालूम कि ताज के आस-पास के इलाके में मुगलकालीन भवनों के वे भग्नावशेष हैं जो अपने समय में तो संसार में सर्वश्रेष्ठ माने जाते ही थे पर आज भी युग को चुनौती दे रहे हैं।

विश्वविख्यात ताज की पृष्ठभूमि में मुगलकालीन आगरा के अध्ययन की आंज जितनी आवश्यकता है, उतनी इससे पहले कभी नहीं थी, क्योंकि देश के सामाजिक एवं राजनीतिक पुनर्गठन में आगरा के महत्व पर पुनः जोर दिया जा रहा है।

ऐतिहासिक इमारतों का अंग्रेजों द्वारा गिराया जाना

जहाँ आज ताजमहल स्थित है, वहाँ पर राजा मानसिंह के पौत्र राजा जयसिंह का आलीशान बाग था। इसे शाहजहाँ ने खरीदा था ताकि रमणीक उद्यान में बेगम मुमताज-उल-जमानी का मकबरा बनवाये। लाल किले से ताज तक बड़े-बड़े आलीशान भवन थे जिनको मुगल बादशाहों ने बनवाया

था। इतिहासकारों का कथन है कि श्मसान घाट के पास पहले राजा टोडरमल, राजा मानसिंह और राजा जयसिंह के महल थे, जो कि नष्ट कर दिये गये।

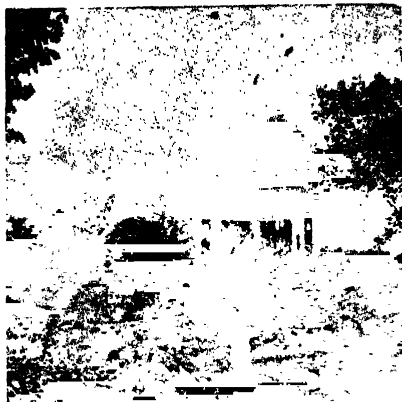
अंग्रेज लेखक फरग्यूसन का कथन है, "हमने आमतौर पर धार्मिक स्थानों को नहीं गिराया और कभी-कभी मकबरों को भी सुरक्षित रखा, क्योंकि इनके गिराने में आर्थिक लाभ के होने की अधिक गुंजायश नहीं थी और इमारतों के विनष्ट करने में भारतीयों की धार्मिक भावना को ठेस लगने का भी खतरा था। जब हमने भारतीय नरेशों का सफाया किया, तब उनके विशाल भवनों के दावेदार भी सामने नहीं आये। ऐसी हालत में हमने अधिकतर इन स्थानों को ढा दिया और उनमें से बहुत कम जगहों को रहने के लिए या बारूदखाने के लिए इस्तैमाल किया। आगे आने वाली सन्तानों के लिए हमने इस प्रकार की इमारतें छोड़ी ही नहीं जिनको देखकर वे प्रशंसा करें।" ('मुगल स्थापत्य कला', पृष्ठ २८७)

एक अन्य अंग्रेज इतिहासकार श्री कीन का कथन है कि आगरा में अंग्रेजों ने शाही इमारतों को तुड़वाने का काम इस तेजी के साथ किया कि ताजगंज में 'नौ महल' नामक इमारत के हिस्सों को पाँच-पाँच रुपये में बेचकर तुड़वाया गया। ब्रिटिश साम्राज्य-वादियों द्वारा आगरा में इन ध्वंसात्मक कार्यवाहियों का उद्देश्य स्पष्ट था कि आगरा उन गौरवशाली इमारतों से प्रेरणा लेकर अकबर महान् के युग को वापस लाने के लिए प्रयत्नशील न हो जाय। इसीलिए जानबूझकर अंग्रेजों के समय से आगरा

का स्तर धीरे-धीरे गिराया जाने लगा और अब आगरा बिलकुल गौण रह गया।

रूमी हवेली का टीला

लाल किले से जाते समय बीच रास्ते में रूमी हवेली के खण्डहर अब भी मिलते हैं। शाहजहाँ के राज्य के चौथे वर्ष में रुस्तम खाँ नामक मुगल सरदार ने इस विशाल इमारत का निर्माण कराया था।



रूमी हवेली का टीला

रुस्तम खाँ का असली नाम मुकर्रब खाँ था। दारा शिकोह की सिफारिश से वह काबुल का गवर्नर बनाकर भेजा गया था। औरंगजेब और दारा शिकोह के झगड़े में इसने दारा का साथ दिया और सामूगढ़ की लड़ाई में वह बुरी तरह घायल हुआ और सन् १६५८ में मारा गया। दारा का साथी होने के कारण औरंगजेब ने इसके शानदार महल पर अधिकार कर लिया और इसे तुर्की के शाही खानदान के एक व्यक्ति इस्लाम खाँ को दे दिया।

पुरातत्त्व विभाग के डायरेक्टर जनरल मेजर जनरल कनिंघम ने सन् १८७२ में लिखा है, "यह इमारत अब जीर्ण

अवस्था में है। इसकी कुछ बुर्जियाँ अब भी कायम हैं। वास्तव में आगरा नगर की इमारतों के भग्नावशेषों में यह सबसे अधिक सुन्दर एवं हृदयग्राही है, जिसको देखना अत्यावश्यक है।"

अंग्रेजों ने बाद में सड़क निकालकर इस इमारत के बचे-खुचे निशानों को भी खत्म कर दिया। अब केवल इस विशाल महल का एक बुर्ज कायम है जो रास्ता चलते लोगों को पुराने वैभव की याद दिलाता है।

सैयद जलाल बुखारी का मकबरा

श्मसान घाट के ऊपर टीले पर एक मस्जिद दिखाई देती है। यहाँ पर जहाँगीर के समय के मुसलमानों के पीर सैयद जलाल बुखारी का मकबरा है। इनके पिता फारस के शाही खानदान से थे जिनका मकबरा अहमदाबाद से पाँच मील की दूरी पर तबोह नामक स्थान पर है। सैयद जलाल बुखारी दर्वेश कहलाते थे और गुजरात पर चढ़ाई के समय बादशाह इनको साथ ले गया था।



सैयद जलाल बुखारी का मकबरा

खान आलम मिर्जा बरखुरदार का बाग

ताजमहल के निकट एक आलीशान बाग है जिसके चारों तरफ ऊँची-ऊँची दीवारें हैं यहाँ आजकल सरकार की ओर से बागवानी का काम होता है। यह बाग और इसके अन्दर जिस महल के भग्नावशेष है, वह इन्हें जहाँगीर के समय के राजनीतिज्ञ एवं अजरबाईजन स्थित भारतीय राजदूत खान आलम मिर्जा बरखुरदार ने बनवाया था। इस स्थान में जमुना के तट पर जमीन के नीचे भी भवन है, जिसकी जानकारी बहुत कम लोगों को है। यहाँ भी आलीशान महल था जिसको गिरा दिया गया। अलीगढ़ के एक मुस्लिम रईस ने सन् १८६८ में चार हजार रुपये में आगरे की एक वेश्या को यह बाग बेच दिया था, जिसे बाद में आगरा के कमिश्नर रोज ने खरीदा। खान आलम तिमूर के वंशज थे।

दीवानजी बेगम का मकबरा

यदि मुगलकालीन इमारतों के खण्डहरों को देखना है तो ताजगंज से बसई जाते समय रास्ते में दीवानजी मोहल्ले के उस आलीशान भवन को देखिए जो प्राचीन स्थापत्य कला अब की भी दुहाई दे रहा है। यह स्थान दीवानजी बेगम के मकबरे के नाम से विख्यात है। दीवानजी बेगम मुमताजमहल की माँ थी और मिर्जा गयासुद्दीन के पुत्र आसफ खाँ की पत्नी थी। इनका मकबरा जहाँगीर के समय में बना था। इस इमारत के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह जहाँगीर के समय में अद्वितीय थी, इसको देखने के लिए विदेशी दूर-दूर से आते थे। आज वहाँ पर खण्डहर के सिवाय कुछ भी नहीं

है। आस-पास रहने वाले किसान जमीन के अन्दर बने हुए कमरों में आगरा की गर्मी में आनन्द से दोपहरी बिताते हैं। वहाँ सरकारी तौर पर नोटिस भी नहीं लगा है कि यह प्राचीन इमारत है।



दीवानजी बेगम का मकबरा

इसी प्रकार ताज के आसपास अनेक शाही इमारतें थीं जिन्हें अंग्रेजों ने गिरवा दिया या रक्षा न होने पर गिर पड़ीं। ताजगंज के करीब जो टीले दिखाई देते हैं वे इस बात के द्योतक हैं। कुछ इमारतें ऐसी हैं जिनको बेच दिया गया और जो अब भी मौजूद हैं, जैसे ताज टेनरी की इमारत। यह शाही जमाने की है।

आगरा का गौरव केवल पुरानी शाही इमारतों के गुणगान करने में या मुगलकालीन स्थापत्य कला की चिर स्मरणीय भेंट ताज की प्रशंसा करने में ही निहित नहीं है; आगरा मुगल काल में क्यों गौरवान्वित हुआ इसके कारण भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं आर्थिक थे।

आगरा का गौरव उन महान् परम्पराओं को आगे ले जाने में है जिनके कारण वह केवल मुगलों के समय में सारे देश

की राजधानी बन सका और आज उपेक्षित होने पर भी वह अपने अस्तित्व को सँवारे हुए है।

आगरा के बारे में फ्रांसीसी लेखक बर्नियर ने शाहजहाँ के समय में जो लिखा है उसको कदापि भुलाया नहीं जा सकता— "आगरा देहली से बड़ा शहर है, जहाँ सड़कों पर दिन में भारी चहल-पहल रहती है। रात को उच्च अट्टालिकाओं से जगमगाती रोशनी बड़ी शोभायमान प्रतीत होती हैं। रात को भी आगरा में चैन नहीं मालूम पड़ता, आधी रात तब वही चहल-पहल रहती है। इस नगरी में कोई भी नागरिक चाहे महिला ही क्यों न हो, बिना किसी भय व डाकुओं के आतंक के बेधड़क नगर में अकेला घूम सकता है। यह बात एशिया के किसी भी नगर में असम्भव है। यही केवल ऐसा नगर है जहाँ धूल के कारण परेशानी नहीं उठानी पड़ती। रात को जब आकाश में तारे झिलमिला रहे हों, मन्द-मन्द हवा चले तो ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ स्थान यही है।"

(बर्नियर की पुस्तक, 'भारत का भ्रमण' में)

: ३ :

आर्मीनियाई जाति के रोचक ऐतिहासिक प्रसंग

बात कुछ अधिक पुरानी नहीं, केवल तीन सौ वर्ष पहले की है; जब कि एक आर्मीनियाई सामन्त ने ईसाई पादरियों द्वारा संस्थापित शिक्षण-केन्द्र "जेस्यूटस कालेज" को २७००० रुपये की रकम तथा बम्बई के परेल, बान्द्रा आदि गाँवों को दान में दे दिया।

आर्मीनियाई सामन्त मिर्जा जुलकरनैन मुगल बादशाह शाहजहाँ के समय में साँभर क्षेत्र के गवर्नर थे। मिर्जा, एलप्पी नगर निवासी सिकन्दर नामक प्रख्यात आर्मीनियाई के पुत्र थे, जिनका पालन-पोषण सम्राट अकबर की देख-रेख में आगरा किला में हुआ बताया जाता है।

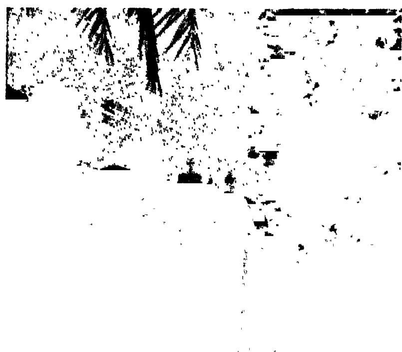
योरोप व एशिया के सीमा स्थित आर्मीनियाई राज्य से भारत का सम्पर्क अत्यन्त पुराना बताया जाता है। आर्मीनियाई व्यापारियों के साथ ७८० ई० में भारत से सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे, लेकिन कुछ ईसाई इतिहासकारों के अनुसार उत्तरी भारत में ईसाई मत का प्रादुर्भाव सन्त टामस के भारत आगमन पर हुआ, जो पंजाब स्थित 'गुदनाभर' नामक राजा के द्वारा चलाये गये सिक्कों से साबित होता है। इतिहासों में यह काल

पहली सदी के अन्तर्गत आता है। ईसाई मतावलम्बियों में आर्मीनियाई जाति के लोग अधिक थे, जो उत्तर भारत के व्यापारिक केन्द्रों में आकर बस गये थे।

सम्राट् अकबर के समय आगरा में आर्मीनियाई बस्तियाँ थीं जिनके विषय में अंग्रेज पादरी टेरी ने लिखा है कि यहाँ बहुत से आर्मीनियाई लोग रहते हैं जो शराब बनाने व बेचने का व्यापार करते हैं। अकबर के समय में आर्मीनियाई जाति के लोगों का एक गिर्जा सन् १५६२ में आगरा में बना था।

'आइने-अकबरी' के अनुसार आर्मीनियाई अब्दुल हई राज्य का मुख्य न्यायाधिपति था और मुगल हरम की चिकित्सक महिला जुलियाना थी, यह आर्मीनियाई बताई जाती है। इसका विवाह अकबर ने फ्रांस से आये हुए शाहजादे जौन फिलिप बर-बन से कराया था।

इसी वातावरण में मिर्जा जुलकरनैन का पालन-पोषण अकबर ने किया और बाद में मुगल राज्य के वे स्तम्भ बने। इतालवी यात्री टेवरनियर जब आगरा आया तो उसने मिर्जा को जमुना किनारे एक आलीशान



अकबर द्वारा संस्थापित आर्मिनायाई गिर्जा

इमारत में रहते हुए और देखा। जुलकरनैन शब्द का अर्थ आर्मीनियाई भाषा में जवाँमर्द बहादुर है।

आगरा में ईसाई पादरियों द्वारा जो शिक्षण संस्था स्थापित हुई, वह जेस्यूटस कालेज के नाम से प्रसिद्ध है। उसके संस्थापकों में मिर्जा जुलकरनैन भी एक हैं।

जेस्यूटस कालेज शिक्षण केन्द्र के अतिरिक्त बाहर से आये हुए ईसाई योरोपीय पादरियों का निवास स्थान भी था। यहाँ पर जहाँगीर ने अपने भतीजे दानियाल को पढ़ने के लिए भेजा था और उस समय समस्त उत्तरी भारत में यह पहला स्थान था जहाँ आधुनिक योरोपीय ढंग की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

ईसाई पादरी कोर्सी ने सन् १६१६ में मिर्जा से आग्रह किया कि जेस्यूटस कालेज को दान में पुर्तगाली गाँव दें। इस पर मिर्जा ने २७००० रु० की रकम दी, जिससे कास्ट्रो नामक पादरी ने बम्बई के परेल और अन्य गाँव खरीदे।

मिर्जा को और ईसाई पादरियों को इस बात का तनिक भी अनुमान नहीं था कि सन् १६६७ में परेल सहित समूचा बम्बई अंग्रेजों के कब्जे में चला जायगा और सारे इतिहास का नक्शा ही बदल जायगा।

मिर्जा उदार दानी, साहसी और वीर था। शाहजहाँ के समय में जब ईसाई पादरियों को हुगली से गिरफ्तार कर लाया गया, तब मिर्जा की मदद से और स्पेन के पादरी फादर मानरिक व

इतलावी जौहरी वोरोनियो, जिसको ताज का निर्माणकर्ता भी बताया जाता है, के प्रयत्नों से उनको छुटकारा मिला।

मिर्जा कवि था और ध्रुपद का अच्छा गायक था। शाहजहाँ कभी-कभी जुलकरनैन की ध्रुपद की गायकी का आनन्द लेता था। मिर्जा की पत्नी का देहान्त सन् १६३८ में हुआ था। उसका मकबरा लाहौर में अब भी विद्यमान है।

लगभग बीस वर्ष बाद मिर्जा का देहान्त हुआ। उनका मकबरा सेंट पीटर्स कालेज आगरा के हाते में बताया जाता है।

अंग्रेजों द्वारा बम्बई व परेल पर कब्जा किये जाने से जेस्यूटस कालेज को काफी क्षति उठानी पड़ी, क्योंकि प्रतिवर्ष वहाँ से आठ हजार अशर्फी की आमदनी होती थी। आगरा कालेज घाटे और कर्जे में चलने लगा और उस पर आश्रित व्यक्तियों को मुसीबतें उठानी पड़ीं।

मिर्जा की पुत्री क्लारा विधवा थी। उसे जेस्यूटस कालेज से सहायता मिलती थी। उसको भी काफी परेशानी उठानी पड़ी।

दयालबाग से आगे पोइया घाट पर ६ आर्मीनियाइयों के मकबरे बताये जाते हैं जिनमें से एक अब भी कायम है। यह मकबरा बीबी देसा का है, जो १२ मार्च सन् १७३६ में मरीं। इनको मिर्जा जुलकरनैन का वंशज बताया जाता है। आर्मीनियाई जाति के लोगों का आगरा में मुगल दरबार में काफी प्रभाव था। यहाँ उनकी बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थीं। मण्टोला, नाई की मण्डी का मोहल्ला सम्भवतः आर्मीनियों द्वारा बासया

गया हो, क्योंकि आर्मीनियाई भाषा में मरग़टोला शब्द गले के हार के लिए भी इस्तैमाल होता है।

आगरा में आर्मीनियाई व्यापारी ख्वाजा मार्टिनपस का मकबरा है, जो सन् १६१२ का बताया जाता है। ख्वाजा आगरा से रोम गया और बाद में पुर्तगाल की राजधानी लिसबन जाकर यहाँ वापिस आ गया।

आगरा की आर्मीनियाई महिला को ही सर्वप्रथम ब्रिटेन की यात्रा करने का गौरव प्राप्त है।

जेम्स प्रथम के काल में जब कैप्टन हाकिन्स को जहाँगीर के दरबार में भेजा गया, तब उसे मुगल प्रथा के अनुसार आर्मीनियाई युवती भेंट में मिली, जिसके साथ उसका विवाह हो गया।

हाकिन्स १६ अप्रेल, सन् १६०६ में जहाँगीर के दरबार में उपस्थित हुआ। हाकिन्स ने लिखा है,…"बादशाह की यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं हरम की किसी युवती को ग्रहण करूँ। बादशाह सलामत ने यह वायदा किया कि वह महिला ईसाई धर्म की होगी, जिस पर विश्वास किया जा सकेगा। बादशाह सलामत ने मुबारक शाह की लड़की को पेश किया जो आर्मीनियाई थी।" हाकिन्स के बयान से ज्ञात होता है कि उस महिला के वन्धु-बान्धव आगरा में थे, जबकि वह २२ नबम्बर, सन् १६११ को यहाँ से रवाना हुआ।

सन् १६१२ में जलपोत द्वारा हाकिन्स सपत्नीक इग्लैंड को वापिस लौट गया लेकिन दुर्भाग्यवश मार्ग में ही उसका देहान्त हो गया। उसकी पत्नी (आर्मीनियनाई महिला) अनाथ व

असहाय अवस्था में अपने पति का शव लेकर ब्रिटेन पहुँची, जिसको आयरलैंड में दफनाया गया।

आर्मीनियाई युवती अनजाने देश में निस्सहाय अवस्था में मारी-मारी फिरी सौभाग्यवश उसके पास हीरे जवाहरात थे, जो इस मुसीबत के समय काम आये। एक हीरा तो बहुत कीमती था जिसका मूल्य करीब २०० पौंड था।

एक ओर हीरे-जवाहरात और दूसरी ओर आर्मीनियाई सुन्दरता। सारा ब्रिटेन आगरा से आई हुई इस आकर्षक नव-युवती के रूप और लावण्य पर मुग्ध हो उठा।

सन् १६१४ में आर्मीनियाई महिला ने गेवरील टावरसन नामक जहाज के एक कैप्टिन से विवाह कर लिया।

शादी के बाद पति-पत्नी भारत आये और आगरा में भी ठहरे। बाद में टावरसन को ईस्ट इण्डीज के मोलूका द्वीप का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया, जहाँ हालैण्ड के उपनिवेश-वादियों ने उसकी निर्दयतापूर्ण हत्या कर दी।

बाद में आर्मीनियाई महिला पुनः आगरा वापिस लौट आई, यहाँ उसने अपने जीवन के अन्तिम दिन बिताये। मरने के बाद अन्य आर्मीनियाइयों की तरह उसको भी दीवानी कच-हरी के सामने वाले कब्रिस्तान में दफना दिया गया।



: ४ :

मुगलकालीन आगरा की भाषा

आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व अकबर बादशाह ने सर्व प्रथम ईसाई पादरियों को भारत आने का निमन्त्रण दिया था। करीब तीन माह की लम्बी यात्रा के बाद २८ फरवरी, १५८० को अकबर महान् की राजधानी आगरा से २५ मील दूर फतहपुर सीकरी में ईसाई पादरियों का दल बड़ी धूमधाम से आया। योरोपीय पादरियों को भारत में ईसाई धर्म के प्रचारार्थ किस भाषा का सहारा लेना पड़ा, इस प्रश्न के उत्तर में जब खोज की जाती है तब हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी भाषा के प्रश्न पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। जनता में प्रचार के लिए जनप्रिय भाषा का सहारा लेना अनिवार्य है। अकबर के दरबार में राजकीय कार्य के लिए फारसी भाषा का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक था, लेकिन योरोपीय ईसाई पादरियों को भारतीय जनता के निकट आने के लिए व सम्पर्क स्थापित करने हेतु फारसी व उर्दू का सहारा नहीं लेना पड़ा। उन्हें हिन्दी सीखने और उसके द्वारा प्रचार करने के लिए विवश होना पड़ा।

इस ऐतिहासिक रहस्य का पता इटली की राजधानी रोम

से प्रकाशित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक सर एडवर्ड मेकलैगन द्वारा लिखित 'जेस्यूटस एण्ड दी ग्रेट मुगल' से लगता है। यह पुस्तक कैथोलिक ईसाइयों के धर्मगुरू पोप के सूचनार्थ लिखी गई है, जिसकी कुछ अंग्रेजी की प्रतियाँ भारत में उपलब्ध हैं। उसमें स्पष्ट लिखा है कि "पादरियों के लिए हिन्दुस्तानी का अर्थ भारतीय जनता की भाषा से था जो आम जनता की चलताऊ भाषा थी।"

हिन्दुस्तानी का अर्थ हिन्दी

उपरोक्त पुस्तक में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि मुगलकालीन पादरियों के लिए भारतीय भाषा की जानकारी अत्यन्त आवश्यक थी, ताकि मिशन का काम आम जनता में किया जा सके। उस पुस्तक में लिखा गया है, "यद्यपि हिन्दुस्तानी का अर्थ साधारणतः उर्दू समझा जाता था तथापि पादरियों ने उसका अर्थ भारतीय जनता की भाषा हिन्दी समझा।" अंग्रेज पादरी टेरी जो जहाँगीर के समय में आगरा आया था, उसने ईसाई मिशन द्वारा अपनायी गई भाषा के सम्बन्ध में लिखा है—भाषा की लिखावट हिन्दी की तरह बाँयी से दाहिनी तरफ लिखी जाती थी। लिपि देवनागरी थी जो कि बाईं तरफ से दाहिनी तरफ लिखी जाती थी। बोल-चाल की जो भाषा उस समय थी उसे जबान-ऐ-हिन्दवी कहते थे।

आचार्य शुक्लजी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी के विकास के सम्बन्ध में लिखा है, "अकबर और जहाँगीर के समय में ही खड़ी बोली भिन्न-भिन्न प्रदेशों में शिष्ट-समाज के

व्यवहार की भाषा हो चली थी। यह भाषा उर्दू नहीं कही जा सकती; यह हिन्दी खड़ी बोली है।" ('हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ४१०)

'जेस्यूटस एण्ड दी ग्रेट मुगल' नामक पुस्तक में मुगलकालीन पादरियों की भाषा के सम्बन्ध में खुलासा करते हुए बताया गया है, "ईसाई पादरियों द्वारा जब हिन्दुस्तानी भाषा के प्रयोग के बारे में कहा जाता है तो उसका अर्थ मुगल दरबार के बाहर बोली जाने वाली भाषा से है। चूँकि अधिकारी वर्ग विशेषत: मुस्लिम होता था, अतएव हिन्दुस्तानी भाषा का अर्थ आमतौर पर हिन्दुओं द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी भाषा से होता है।"

अकबर के जमाने में सर्वप्रथम ईसाई पादरियों के दल के नेता रुडोल्फ एक्यूविवा ने अकबर के राज दरबार से लौटने के बाद इसी नीति के अनुसार सन् १५८२ में गोआ में हिन्दी भाषा सिखाने के लिए स्कूल खोलने के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये, ताकि पादरियों को भारतीय भाषा से परिचित कराया जा सके।

यही नहीं, बल्कि कैथोलिक धर्मावलम्बियों के आगरा कैलेण्डर से ज्ञात होता है कि अकबर और जहाँगीर के समय में बड़े दिन के अवसर पर खेले जाने वाले ड्रामों और नाटकों में हिन्दी भाषा का खुलकर प्रयोग किया जाता था।

मुगल बादशाह अकबर और जहाँगीर आदि को ईसाई बनाने के प्रयासों में असफल होने के बाद पादरियों ने उत्तरी भारत के नगरों में हिन्दी भाषा का खुलकर इस्तैमाल करना शुरू कर दिया।

पादरियों के लिए हिन्दी भाषा का अध्ययन अनिवार्य

भारत में आये ईसाई मिशन के पादरियों के लिए हिन्दी भाषा का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया। यह नियम सख्ती से उन स्थानों के पादरियों के लिए भी लागू था, जहाँ की भाषा हिन्दी नहीं थी। क्योंकि हिन्दी के साधारण ज्ञान के द्वारा दुभाषिये की सहायता से वे काम चलाने में समर्थ हो सकते थे।

१७१४ में ईसाई पादरी डेसीडेरी के नेतृत्व में आगरे से एक ईसाई दल तिब्बत गया था। वहाँ से लौटने के बाद पादरी डेसीडेरी ने लिखा कि यदि कोई व्यक्ति तिब्बत जाना चाहता है तो उसके लिए हिन्दुस्तानी (हिन्दी) भाषा का सीखना अनिवार्य है। क्योंकि इसकी मदद से तिब्बत की भाषा सुगमता से समझी जा सकती है।

इससे स्पष्ट है कि मुगल दरबार में यद्यपि फारसी का चलन था तथापि समूचे उत्तरी भारत में हिन्दी को ही आम जनता का समर्थन प्राप्त था।

इसी प्रसंग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी 'साहित्य के इतिहास' में लिखा है कि: संवत् १८९० के लगभग आगरा में पादरियों की एक संस्था "स्कूल बुक सोसायटी" स्थापित हुई थी। सोसायटी की तरफ से प्रकाशित पुस्तकों की भाषा 'विशुद्ध' और 'पंडिताऊ' थी। 'का' के स्थान पर 'करी' और 'पाते हैं' के स्थान पर 'पावते हैं' आदि के प्रयोग बराबर मिलते हैं।

आचार्यजी ने आगे लिखा है—ईसाइयों ने अपनी धर्म

पुस्तक के अनुवाद की भाषा में फारसी और अरबी के शब्द जहाँ तक हो सके नहीं लिये हैं और ठेठ ग्रामीण शब्द तक बेधड़क रखे गये हैं।

श्री जे० नटराजन् ने 'भारतीय पत्रकारिता का विकास' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में बताया है कि श्रीरामपुर (बंगाल) में ईसाई मिशन ने सर्व प्रथम सन् १८४० में 'समाचार दर्पण' और 'दिग्दर्शन' नामक पत्र ठेठ बंगाली भाषा में निकाले।

संस्कृत भाषा का अध्ययन

आगरा मिशन में सुरक्षित पुराने दस्तावेजों से पता चलता है कि भारत में आये ईसाई पादरियों ने न केवल हिन्दी भाषा को अपनाया वरन् संस्कृत का भी अध्ययन किया।

कैथोलिक पादरी राथ संस्कृत के ज्ञाता समझे जाते थे। पादरी राथ द्वारा संस्कृत पुस्तक का अनुवाद किया गया जो हालैण्ड के नगर एम्स्ट्रडम में १६६७ में पादरी किरचर द्वारा प्रकाशित कराया गया। यह पुस्तक एम्स्ट्रडम के पुरातत्त्व संग्रहालय में अब भी मौजूद है।

पादरी राथ के अलावा एक अन्य जर्मन पादरी भी हुए हैं जो संस्कृत भाषा के विद्वान थे, जिनका नाम टिफनटालर है। यह अस्ट्रिया के टायरल नगर के निवासी थे। सन् १७४३ में लिसबन से गोआ ईसाई धर्म के प्रचारार्थ भारत आये थे। टिफनटालर ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे और जयपुर की वेधशाला में कार्य करने के लिए महाराजा जयपुर ने उन्हें अपने यहाँ रख लिया था। राजा जयसिंह के स्वर्गवास के बाद वे

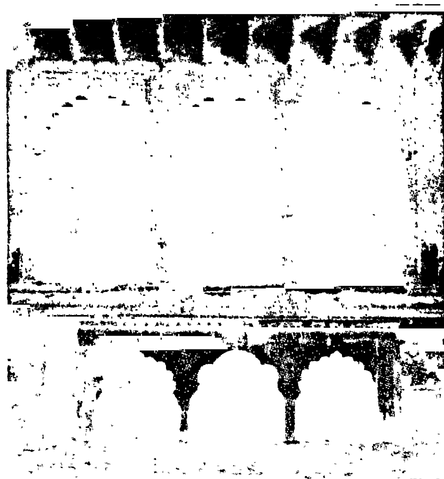
आगरा के ईसाई कालेज के शिक्षक हो गये। पादरी टिफनटालर जर्मन, फ्रेंच, इतालवी, स्पेनिश और लेटिन भाषा के विद्वान् बताये जाते हैं। भारत में रहकर अरबी, फारसी और संस्कृत भाषा का उन्होंने अध्ययन किया। इन्होंने फारसी और संस्कृत का शब्द कोष, गणित व ज्योतिष शास्त्र पर पुस्तकें लिखीं तथा भारत का सर्वप्रथम भूगोल भी छपवाकर प्रकाशित करवाया। इनका देहान्त लखनऊ में हुआ। बाद में इनके शव को आगरा लाकर दफनाया गया।

ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा हिन्दी की सेवा के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—हिन्दी गद्य के प्रसार में ईसाइयों का बहुत कुछ योग रहा है। शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें तो पहले-पहल उन्होंने तैयार कीं। इन बातों के लिए हिन्दी प्रेमी उनके सदा कृतज्ञ रहेंगे।

: ५ :

उर्दू कवि मिर्जा गालिब का जन्म-स्थान—आगरा का काला महल

मुगलकालीन आगरा का इतिहास जहाँ मकबरों और कब्रों में छिपा पड़ा है, वहीं दूसरी तरफ शाही इमारतों में मुगल साम्राज्य के वैभव की कहानी भी बिखरी पड़ी है। यहीं पर मुगलों और राजपूतों ने मिलकर अकबर के समय में दृढ़ साम्राज्य की नींव डाली थी।



आगरा का काला महल

इन्हीं इमारतों में राजपूत सेनानी पैदा हुए, जिन्होंने बाद में मुगल साम्राज्य को चुनौती देकर ध्वस्त किया।

इन्हीं शाही इमारतों में रहकर साहित्य का सृजन हुआ, कविता में जान फूँकी गई। आगरा में इस प्रकार की

अनेक इमारतें हैं जिनमें प्रमुख पीपलमण्डी स्थित काला महल है।

राजा गर्जसिंह की हवेली

काला महल के बारे में "आगरा गजेटियर" में लिखा हुआ है कि यह शाही महल जोधपुर के राजा सूरसिंह के सुपुत्र राजा गर्जसिंह की हवेली के नाम से प्रख्यात था।

मारवाड़ के राजा जोधपुर की वीरता का इतिहास इस काला महल नामक शाही इमारत से सम्बद्ध है। यहीं राजा गर्जसिंह मुगल बादशाह के समय में रहते थे।

राजा गर्जसिंह अपने पिता के समान ही योद्धा एवं पराक्रमी थे। राजा सूर को अकबर की सेना में प्रमुख स्थान प्राप्त था। गुजरात की विजय में इनका विशेष हाथ था।

जब राजा सूरसिंह का देहान्त हुआ तो राजतिलक का टीका लेकर अब्दुलरहीम खानखाना के पुत्र दरब खाँ स्वयं पहुँचे, जहाँ बादशाह जहाँगीर ने समस्त दरबार में उनका टीका किया।

राजा गर्जसिंह ने अपनी वीरता-कुशलता से सबको मुग्ध कर लिया था। संवत् १६६४ में गुजरात के अभियान में उनकी हत्या कर दी गई। राजा गर्जसिंह के तीन पुत्र थे। इनमें जसवन्त सिंह भारतीय इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं।

अमरसिंह राठौर

राजा गर्जसिंह ने मृत्यु से पाँच वर्ष पूर्व समस्त राजपूत जाति का दरबार बुलाकर अपने ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह को राज्य-

सिंहासन से च्युत कर दिया, क्योंकि महाराज उनकी आदतों से परेशान थे ।

अमरसिंह ने आगरा आकर बादशाह शाहजहाँ के दरबार में नौकरी कर ली । यहाँ पर उनकी आदतों में तनिक भी सुधार नहीं हुआ । टाड के अनुसार शाहजहाँ ने गुस्से में आकर जुर्माना लगाने की धमकी दी, जिसके लिए सलाबत खाँ को भेजा । अमरसिंह ने निधड़क जवाब दिया, "मैं शिकार खेलने गया था और जहाँ तक जुर्माना देने की बात है, मेरे पास तलवार की दौलत के अलावा और कुछ नहीं है, जिसकी हिम्मत हो मुझसे जुर्माना वसूल करे ।"

लाल किले में हत्याकाण्ड

अमरसिंह ने इस प्रकार शाहजहाँ द्वारा भेजे गये मुगल सेनापति की खुले आम तौहीन की, जिसको बादशाह भी बर्दाश्त नहीं कर सके ।

बाद में अमरसिंह को बादशाह ने आगरा किले के दीवाने-आम में बुलाया, ताकि उनसे जवाब तलब किया जा सके । दीवाने आम में अमरसिंह ने सलाबतखाँ पर प्रहार किया, वह वहीं पर काम आ गया । उन्होंने तलवार खींचकर शाहजहाँ पर भी मारी, जो खम्भे में जाकर लगी । सारे दरबार में कोहराम मच गया । इसी घबराहट में बादशाह सिंहासन छोड़ कर चला गया ।

अमरसिंह के साथियों को काट डाला गया । अमरसिंह भी स्वयं काम आये । उनकी पत्नी बूँदी की राजकुमारी थीं, वे

पति के साथ सती हो गईं। इस काण्ड के बाद लाल किले के जिस फाटक से अमरसिंह व उनके साथी गये थे, उसे अमरसिंह द्वार कहा जाने लगा। इससे पहले इसका नाम बुखारा द्वार था। इस घटना के बाद एक शताब्दी तक यह द्वार बन्द रहा। बाद में इसे अंग्रेज इंजीनियर केप्टेन जनरल स्टील की मदद से खोला गया।

इंजीनियर स्टील ने 'टाड' को बताया कि आगरा के लोगों का ऐसा विश्वास था कि अमरसिंह राठौर किसी न किसी रूप में इस द्वार की रक्षा करता है। हुआ भी ऐसा ही, जब अमरसिंह द्वार खोला गया, तब एक लम्बा काला साँप फन फैलाये हुए मिला।

हारे हुए राजा के लिए काले महल के द्वार बन्द

राजा गजसिंह के पुत्र राजा जसवन्तसिंह के सम्बन्ध में वरदाई ने लिखा है कि समूचे मेवाड़ में जसवन्तसिंह जैसा दानी वीर और मर्मज्ञ राजपूत नहीं था। इसके काल में विज्ञान और साहित्य पनपा।

राजा जसवन्तसिंह बादशाह शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दारा के मित्रों में से थे। यही कारण था कि दारा ने अल्प शासन में उनको पंचहजारी मनसबदार नियुक्त कर दिया था।

बादशाह शाहजहाँ ने जसवन्तसिंह को औरङ्गजेब के विद्रोह को दबाने के लिए भेजा। इन दोनों के बीच घमासान युद्ध हुआ।

इस युद्ध में औरङ्गजेब को काफी क्षति उठानी पड़ी, लेकिन छल-प्रपंच व कपट के कारण जसवन्तसिंह हार गये।

हार के बाद जसवन्तसिंह आगरा वापिस आये, सम्भवत: काले महल में। इस सम्बन्ध में फ्रान्सीसी लेखक बर्नियर ने लिखा है कि राजपूती परम्परा के अनुसार वीर क्षत्राणी ने महल के सारे द्वार बन्द करा दिये और हारे हुए राजा से मिलने से साफ इन्कार कर दिया।

औरङ्गजेब ने राज्य सिंहासन सँभालने के बाद जसवन्तसिंह से मेल कर लिया और उनको काबुल का गवर्नर नियुक्त कर अफगानिस्तान भेज दिया। वहीं पर उनका देहान्त हुआ। उनका शव काबुल से आगरा लाया गया, यहाँ पर उनकी रानियाँ शव के साथ सती हुईं। आगरा वाटर वर्क्स से आगे राजा जसवन्तसिंह की छत्तरी अब भी विद्यमान है।

मिर्जा गालिब का जन्म

बताया जाता है कि राजा गजसिंह की हवेली में उर्दू के महान् कवि मिर्जा गालिब का जन्म हुआ। मिर्जा के चाचा नासिर उल्लाखाँ सूबा शमसाबाद के रिसालदार थे। इनका हेड-क्वार्टर अकबराबाद में काले महल में था।

आगरा किले के अलावा राजा गजसिंह की हवेली के अतिरिक्त कोई ऐसा उपयुक्त स्थान न था, जहाँ लार्ड लेक द्वारा नियुक्त रिसालदार का कार्यालय कायम हो सके। अब गजसिंह की हवेली काले महल के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी थी। मिर्जा

गालिब के बाप अब्दुला बेग खाँ अलवर की सेना में ऊँचे ओहदे पर थे जो राजगढ़ में दफनाये गये।

राजा बलवानसिंह और मिर्जा गालिब

काला महल के बारे में मिर्जा गालिब ने आगरा के रईस मुंशी शिवनारायन को लिखा, "हमारी बड़ी हवेली। उसकी संगीन बारादरी पर बैठक थी और पास उसके घटिया वाली हवेली सलीम शाह के तकिये के पास दूसरी हवेली काले महल से लगी हुई थी।"

बनारस के राजा चेतसिंह जिनको अंग्रेज वायसराय ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में कैद कर आगरा भिजवाया था, कश्मीरी बाजार की एक हवेली में रहते थे। उनके पुत्र राजा बलवानसिंह जो स्वयं फारसी के उच्च कोटि के शायर थे, मिर्जा गालिब के मित्रों में थे। मिर्जा साहब राजा बलवानसिंह के साथ पतंग उड़ाते थे, जिनका जिक्र उनके पत्रों में मिलता है।


दिल्ली में मिर्जा गालिब की कब्र

शतरंज की चालें, पतंगबाजी और मु[illegible]त भरी रातें, इन सबका जिक्र मिर्जा गालिब ने काले महल में बीते हुए दिनों के सम्बन्ध में किया है।

मिर्जा गालिब ने इसी काले महल की 'बारादरी के संगीन दरवाजे के ऊपर वाली बैठक' में शायरी आरम्भ की।

इण्डिया आफिस, लन्दन रखी पुस्तक में श्री खूबचन्द ने मिर्जा गालिब को अकबराबाद के शायर के रूप में स्वीकार किया है—

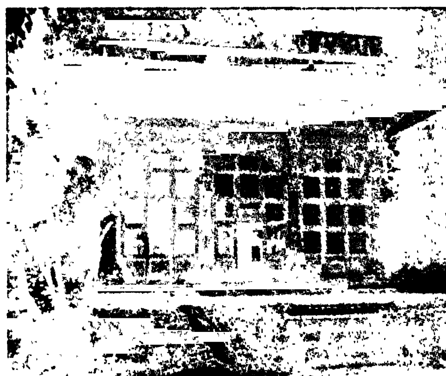
"जख्मे दिल तुमने दुखाया है कि जी जाने है,
ऐसे हँसते को रुलाया है कि जी जाने है।

ऐसी सुलभ भाषा में मिर्जा ने काले महल में बैठकर शायरी की, जिसके कारण उर्दू साहित्य में ही नहीं वरन् विश्व साहित्य में हमेशा के लिए गालिब अमर हो गये।

: ६ :

राजा जसवन्तसिंह

मुगलकालीन शाही इमारतों और महलों के अतिरिक्त आगरा नगर में जमुना के किनारे एक राजपूती इमारत भी है जिसे जसवन्तसिंह की छत्तरी के नाम से पुकारा जाता है। एक मात्र राजपूती भवन जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह का समाधि-स्थल है, जिनका देहान्त औरंगजेब के जमाने में काबुल में हुआ था जहाँ के वे गर्वनर थे। इतिहासकारों अथवा जन साधारण के विश्वास के अनुसार जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह का दाह-संस्कार आगरे में हुआ जिनके साथ ९ रानियाँ भी सती हुई थीं।



राजा जसवन्तसिंह की छत्तरी

आज कल राजा जसवन्त-सिंह की छत्तरी पर राजस्थान के नाथद्वारे के मन्दिर का अधि-

कार है। स्व० जसवन्तसिंह के वंशजों ने यह इमारत नाथद्वारे के मन्दिर को सौंप दी थीं। तब से प्रत्येक वर्ष क्वार के दशहरे पर नाथद्वारे के पुजारी आगरा आकर छत्तरी पर पूजा करते हैं और चढ़ावा स्वीकार करते हैं।

नाथद्वारे का अधिकार

नाथद्वारे के पुजारी दशहरे के दिन सुहाग की तमाम वस्तुएँ लाते हैं जिनमें रजपूती लहंगा, फरिया, मँहदी, बिन्दी, हरी चूड़ियाँ आदि प्रमुख हैं। सती का पवित्र स्थान होने के कारण गाँव की आस-पास की नव-विवाहिता भी आकर छत्तरी पर सुहाग की वस्तुएँ चढ़ा कर अपने चिर सुहाग की कामना करती हैं।

यद्यपि यह बात असम्भव-सी मालूम पड़ती है कि राजा जसवन्तसिंह, जिनका देहान्त अफगानिस्तान के नगर काबुल में हुआ, उनका शव आगरा लाकर फूँका जाय; तथापि जन साधारण के विश्वास और नाथद्वारे की इस परिपाटी के अनुसार जसवन्तसिंह की छत्तरी को उनका समाधिस्थल ही माना जा सकता है।

राजपूती स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण

उस स्थान का वर्णन करते हुए आगरा गजेटियर में लिखा है: "जमुना के किनारे पूर्व की तरफ एक छोटा सा गाँव है जो रजवाड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भवत: इस गाँव के आस-पास मुगल साम्राज्य के जमाने में हिन्दू राजाओं के महल हों इसीलिये इस गाँव का नाम रजवाड़ा पड़ा है। यहीं पर स्व०

राजा जसवन्तसिंह की छत्तरी है जो अत्यन्त सुन्दर इमारत है जिसका निर्माण औरंगजेब के काल में हुआ था।

छत्तरी चौकोर लाल पत्थर की बनी हुई विशाल इमारत है, जिसके पूर्व की ओर जमुना बहती है। ऊँची-ऊँची दीवारों के अन्दर एक छोटा-सा बाग है। अत्यन्त कलापूर्ण जाली उस छत्तरी के चारों तरफ है, जिसमें नाना प्रकार की नक्काशी की गई है जो राजपूती स्थापत्य कला का अनुपम एवं अद्वितीय नमूना है।

राजा जसवन्तसिंह

राजा जसवन्तसिंह जोधपुर के महाराजा गजसिंह के सुपुत्र थे। इनके बड़े भाई अमरसिंह राठौर हुए जो शाहजहाँ के में मुगल साम्राज्य से भरे दर्बार में विद्रोह करने के कारण आगरे के लाल किले में मारे गये।

राजा जसवन्तसिंह अत्यन्त कुशल कूटनीतिज्ञ एवं पराक्रमी राजा थे। शाहजहाँ ने स्वयं शाही सेना के साथ औरंगजेब का मुकाबिला करने के लिये इन्हें भेजा था बाद में जब औरंगजेब सफल हुआ और उसने शाहजहाँ को बन्दी बना कर आगरे किले में कैद कर लिया तब राजा जसवन्तसिंह ने अन्य राजपूत राजाओं के साथ मिलकर शाहजहाँ को छुड़ाने की चेष्टा की।

इन तमाम कार्यवाहियों से औरंगजेब जोधपुर के राजा से अत्यन्त सशंकित रहता था। शाहजहाँ की माँ जोधपुर की लड़की होने के नाते राजा जसवन्तसिंह का मुगल दरबार पर काफी प्रभाव था। इन्हीं सब कारणों से औरंगजेब ने इनको

काबुल का गवर्नर बनाकर दिल्ली और आगरे से दूर हटा दिया।

इतिहासकार टाड के अनुसार जब राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई तब उनकी रानी गर्भवती थी। यद्यपि रानी उनके शव के साथ सती होने के लिये कटिबद्ध थी तथापि उन्हें ऐसा नहीं करने दिया गया। इसके उपरान्त भी ६ और रानियाँ सती हो गईं। जब यह समाचार जोधपुर पहुँचा तब रानी चन्द्रावती अपने पति का मुकट लेकर सती हो गई।

राजा जसवन्तसिंह देश की जनता के प्रशंसा के पात्र थे। उनके सम्बन्ध में अनेक उक्तियाँ एवं कहानियाँ आज भी जोधपुर में प्रचलित हैं।

हिन्दी के आचार्य

महाराजा जसवन्तसिंह के सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में निम्नलिखित वर्णन किया है : ये मारवाड़ के प्रसिद्ध महाराज थे जो अपने समय के सबसे प्रतापी हिन्दु नरेश थे जिनका भय औरंगजेब को बराबर बना रहता था। इनका जन्म सम्वत १६८३ में हुआ। ये शाहजहाँ के समय में ही कई लड़ाइयों पर जा चुके थे। ये महाराजा गजसिंह के दूसरे पुत्र थे और उनकी मृत्यु के उपरान्त सम्वत् १६९५ में गद्दी पर बैठे। इनके बड़े भाई अमरसिंह अपने उद्धत स्वभाव के कारण पिता द्वारा अधिकार-च्युत कर दिये गये। महाराजा जसवन्तसिंह बड़े अच्छे साहित्य मर्मज्ञ और तत्वज्ञान सम्पन्न पुरुष थे। उनके राज्य भर में विद्या की बड़ी चर्चा रही और अच्छे-अच्छे कवियों और विद्वानों का

बराबर समागम होता रहा। महाराज ने स्वयं तो ग्रन्थ लिखे ही; अनेक विद्वानों और कवियों से न जाने कितने ग्रन्थ लिखाये।

भाषा-भूषण के रचयिता

हिन्दी साहित्य के इतिहास में महाराजा जसवन्तसिंह के बारे में लिखा है—ये हिन्दी साहित्य के प्रधानाचार्यों में माने जाते हैं और इनका 'भाषा भूषण' ग्रन्थ अलंकारों पर एक बहुत ही प्रचलित पाठ्य ग्रन्थ रहा है। इस ग्रन्थ को इन्होंने वास्तव में आचार्य के रूप में लिखा है, कवि के रूप में नहीं।

'वे आचार्य की हैसियत से हिन्दी साहित्य क्षेत्र में आए, कवि की हैसियत से नहीं। उन्होंने अपना भाषा-भूषण बिल्कुल 'चन्द्रलोक' की छाया पर बनाया और उसी की संक्षिप्त प्रणाली का अनुसरण किया जिस प्रकार 'चन्द्रलोक' में प्रायः एक ही श्लोक के भीतर लक्षण और उदाहरण दोनों का सन्निवेश है उसी प्रकार भाषा-भूषण में भी प्रायः एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनों रखे गए हैं। इससे विद्यार्थियों को अलंकार कण्ठ करने में बड़ा सुभीता हो गया और भाषा भूषण हिन्दी काव्य रीति के अभ्यासियों के बीच वैसा ही सर्व प्रिय हुआ जैसा संस्कृत के विद्यार्थियों के बीच चन्द्रलोक। भाषा-भूषण बहुत छोटा-सा ग्रन्थ है।

"भाषा-भूषण के अतिरिक्त जो और ग्रन्थ इन्होंने लिखे हैं वे तत्वज्ञान सम्बन्धी हैं। जैसे—अपरोक्ष-सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश, आनन्द-विलास, सिद्धान्त-बोध, सिद्धान्तसार, प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक ये सब ग्रन्थ भी पद्य में ही है, जिनसे पद्य

रचना की पूरी निपुणता प्रकट होती है। पर साहित्य से जहाँ तक सम्बन्ध है, ये आचार्य या शिक्षक के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। अलंकार-निरूपण की इनकी पद्धति का परिचय भाषा-भूषण के इस दोहे से मिल जायगा—

अलंकार अत्युक्ति यह,
बरनत अतिसय रूप।
जाचक तेरे दान तें,
भये कल्प तरु भूप॥

आचार्य शुक्ल के अनुसार भाषा-भूषण पर पीछे तीन टीकाएँ रची गईं। इस प्रकार महाराज जसवन्तसिंह हिन्दी के आचार्य थे इसमें तनिक सन्देह नहीं। क्यों न हमारे देश के साहित्यिकगण महाराज जसवन्तसिंह की छत्तरी पर भी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समारोह का आयोजन करें जिससे जोधपुर के महाराजा का यथोचित सम्मान किया जा सके।

———

: ७ :

गवैयों का आगरा घराना
और
आफताबे-मुसिकी उस्ताद फैयाजखाँ

आगरा मुगलिया शान शौकत, शाही इमारतों और ताजमहल के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन सदियों तक मुगल राजधानी रहने के कारण आगरा नगर कला और विशेषकर संगीत का भी केन्द्र रहा है। यहाँ की गायकी ने भारतीय संगीत को एक नया रूप और रंग दिया है।



आफतावे मुसिकी उस्ताद फैयाजखाँ

अकबर महान् के समय में फतहपुर सीकरी और आगरा में संगीत का विकास ही नहीं हुआ, बल्कि ब्रज की उर्वर भूमि में

संगीत ने वास ही कर लिया। भारतीय शास्त्रीय संगीत का जब मुगल युग की सर्वोत्कृष्ट परम्परा से संगम हुआ, तब आगरा के संगीत का नया रूप हुआ जो आगरा घराने की पद्धति और गायकी के नाम से देश भर में प्रख्यात है। वर्त्तमान युग में भी भारतीय संगीत के नभमण्डल को आगरा घराने के संगीतज्ञों ने प्रकाशवान किया है।

आगरा घराने के प्रमुख संगीतज्ञ उस्ताद फैयाजखाँ हुए हैं। इनका देहान्त ५ नवम्बर, १९५० को हुआ। वे आफताबे मुसिकी (संगीत के सूर्य) कहलाये। इनका जन्म आगरा नगर के एक मौहल्ले में हुआ था।

आगरा घराना भारतीय संगीत में केवल एक पद्धति ही नहीं बल्कि गवैयों का खानदान है जो अकबर के समय से संगीत की सेवा करता चला आ रहा है। संगीत ही इस परि-वार का जीवन है, मुख्य पेशा है और 'मिशन' है। इनके लिए पौ फटती है स्वर के अलाप से और रात संगीत मंडलियों व महफिलों में कट जाती है।

सुजानसिंह के वंशज

आगरा घराने के लोगों से पता लगा है कि वे अकबर के सिपहसालार राजपूत योद्धा सुजानसिंह के वंशज हैं जो संगीत की 'भक्ति' छिपकर किया करते थे। अकबर के समय में जब काबुल से आये हुए मिशन की तरफ से दरबार में गाने की फरमाइश हुई, तब सुजानसिंह ने दीपक राग गाकर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। इनको बादशाह की तरफ से

'दीपक ज्योति' की उपाधि से विभूषित किया गया। उस समय सुजानसिंह ने भगवान् की स्तुति में यह ध्रुपद गाया—

"सत गुरु लछमन मेरे
"आठ पहर आनन्द हों तेरे।
"वे लोक परलोक करता दिखाओ
"जाकी रचना न कोई समझे॥"

सुजानसिंह द्वारा सात सौ ध्रुपदों की रचना की गई और इसी कारण सुजानसिंह का परिवार के लोग ध्रुपदिये कहलाये। अकबर के समय में ही सुजानसिंह धर्म परिवर्तन कर मुसलमान हो गये, लेकिन इनके वंशज आज भी अपने को तोमर राजपूत कहते हैं। संगीत इनकी साधना है और जीविका का प्रमुख साधन है।

सुजानसिंह बाद में हाजी सुजानखाँ कहलाये। इनके पुत्र दायमखाँ हुए, जिनको सुरज्ञानखाँ भी कहते हैं। इसी घराने की लड़की तानसेन के परिवार को ब्याही थी और यहाँ के लड़कों की शादियाँ अतरौली (अलीगढ़) हुईं, यहाँ का संगीत रंगीला घराने के नाम से मशहूर है।

१८५७ में विद्रोह

अकबर बादशाह ने सुजानसिंह को अलवर के पास गौंदपुर के इलाके में ८ गाँव जागीर में भेंट किये थे, लेकिन सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने के फलस्वरूप वह जागीर इनसे छीन ली गई। अब आगरा घराने के अवशेष नई बस्ती की एक तंग गली आशुरबेग में रहते हैं।

उस्ताद फैयाजखाँ के पितामह घघे खुदाबख्श केवल ६ वर्ष की आयु में अनाथ हो गये थे। इतनी कम उम्र में उनके पिता आगरा की गायकी कुछ भी नहीं सिखा पाये थे। ग्वालियर के नत्थन पीरबख्श जिन्होंने आगरे घराने से शिक्षा पाई थी ऐसे समय काम आये। घघे खुदाबख्श ने ६ वर्ष गुप्त रूप से आगरा की पद्धति का अभ्यास किया। यदि नन्हा बालक घघे खुदाबख्श तन्मयता से आगरा की गायकी का रियाज न करता तो आज आगरा घराना कभी का लुप्त हो गया होता।

ग्वालियर और आगरा घराना

सुखदेव महाराज के जमाने में जब नत्थन पीरबख्श के सुपुत्र हद्दू खाँ, नत्थूखाँ और हस्सूखाँ का सामना घघे खुदाबख्श से हुआ, तो आगरा गायकी के मसले पर गवैयों में तनाव बढ़ गया। गुस्से में आकर नत्थन पीरबख्श के लड़कों ने राज दरबार में तलवारें खींच लीं और वे घघे खुदाबख्श की जान लेने को आमदा हो गये।

ग्वालियर के महाराजा ने मसले को सुलझाने के लिए नत्थन पीरबख्श को बुलाया और इस रहस्य के बारे में पूछा। दोनों तरफ से एक दूसरे पर गायकी चुराने का अभियोग लगाया जा रहा था।

"महाराज, मेरे गुरु 'श्याम रंग' जी का पुत्र घघे खुदाबख्श हैं। श्याम रंग जी के यहाँ आगरा में मैंने गायन विद्या का अध्ययन किया और अब उनके मर जाने के बाद गुरु के पुत्र घघे खुदाबख्श को मैंने गुप्त रूप से आगरा की गायकी सिखाई है।"

इस बयान के बाद महाराज ने घघे ख़ुदाबख्श को प्रसन्नता से इनाम देकर वापिस किया।

चार घराने

उस्ताद फैयाजखाँ के चचेरे भाई तसद्दुक हुसैन साहब द्वारा रचित 'कलेण्डर मुसिकी' से पता चलता है कि भारतीय संगीत के चार घराने हैं, जिनकी चार प्रमुख पद्धतियाँ हैं—नौहार, डागर, खण्डार और गबर।

नौहार घराने के लोग जो आगरा घराने के नाम से मशहूर हुए, शिव मत के कहलाये। इसी प्रकार डागर भरत मत, खण्डारी हनु मत और गबर कल्यान मत के नाम से पुकारे गये।

रंगीला घराना

अतरौली (अलीगढ़) घराना रंगीला ख्याल के लिए मशहूर हुआ। फैयाजखाँ के ससुर महबूबखाँ बीन के उस्ताद थे और महाराजा अवागढ़ के यहाँ अधिकतर रहा करते थे। इनका उप नाम 'दरस पिया' था, जिनके नाम से अनेक भजन, ध्रुपद आदि मौजूद हैं जो श्री भातखण्डे ने संगीत की पुस्तकों में दिये हैं।

आगरा घराना संगीत में ख्याल के लिए प्रसिद्ध हुआ। यह ख्याल जौनपुर के सुल्तान हुसैन शिरकी के जमाने में बाबा मिलन्दशाह सूफी द्वारा प्रतिपादित किया गया।

उस्ताद फैयाजखाँ के पिता अलीगढ़ के रंगीले घराने के

गवैये थे, लेकिन उनका देहान्त उस समय हुआ जब कि फैयाज खाँ की उम्र केवल ६ माह की थी।

ऐसी अवस्था में फैयाज खाँ के नाना गुलाम अब्बासखाँ ने आगरा में लालन-पालन किया और बाद में फैयाजखाँ को दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया।

संगीत मर्मज्ञ गुलाम अब्बासखाँ साहब भारत के मशहूर गवैये थे, जिनको महाराज जयपुर के यहाँ आश्रय प्राप्त था। उन्होंने फैयाजखाँ को आगरा गायकी के साथ पितृ पक्ष की रंगीली गायकी भी सिखा दी, जिससे उन्होंने संगीत संसार में चमत्कारिक परिवर्तन ला दिया।

आफताबे-मुसिकी

उस्ताद फैयाजखाँ ख्याल के सबसे बड़े गवैये समझे जाते थे। उनके गाने में जो खानदानी रंगीलापन था उसने संगीत में एक विद्रोह सा ला दिया। सुननेवाले दाँतों तले उँगली दबाते थे और गवैये भौचक्के रह जाते थे। इन्हीं कारणों से बड़ौदा के महाराजा ने उन्हें आफताबे-मुसिकी के खिताब से विभूषित किया।



उस्ताद फैयाजखाँ का जन्म स्थान

उस्ताद फैयाजखाँ का तखल्लुस 'प्रेम पिया' था। इनके द्वारा रची हुई अस्थाइयाँ, ठुमरी, होरी और रसिये आज भी लोगों के दिलों में गुंजन कर देते हैं।

स्व० सहगल के भी उस्ताद फैयाज खाँ साहब थे। कहा जाता है कि नट बिहाग "झन झन झन झन पायल बाजे" सुनकर ही सहगल उस्ताद फैयाज खाँ के शार्गिद बनने को आतुर हो गये थे। और बाद में स्व० सहगल ने अपना सर्वोत्तम रेकार्ड "झुलना झुला री आ मोरी, अमवा की डार पर कोयलिया बोले।" उस्ताद फैयाजखाँ को भेंट किया था।

: ८ :

आगरा में पं० मोतीलाल नेहरू के बाल्यकाल की एक झाँकी

६ मई, १८६१ को भारत में दो महान् विभूतियों—पं० मोतीलाल नेहरू एवं कविवर रविन्द्रनाथ टैगोर का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने देश में एक नये युग का समारम्भ किया। एक का जन्म कलकत्ता में हुआ और दूसरे का जन्मस्थान था अमर प्रेम के प्रतीक ताज का नगर—आगरा।



त्याग मूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू का जन्म स्थान

पं० मोतीलाल का जन्म आगरा में होना एक संयोग ही कहा जायगा। क्योंकि उनके पिता श्री गंगाधर नेहरू दिल्ली में कोतवाल के पद पर थे। १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में, जब देशवासियों ने

सम्मिलित रूप में देश को विदेशी शासन के जुये से मुक्त करने की असफल चेष्टा की थी, श्री गंगाधर नेहरू को अपने पुरखों के घर को छोड़कर परिवार सहित आगरा में शरण लेनी पड़ी।

मुगल बेगम की कोठी

पं० मोतीलाल का जन्म मुगल बेगम की शानदार कोठी में हुआ था। यह शानदार कोठी आज भी खण्डहर के रूप में शहर के मध्य माईथान में विद्यमान है और जहाँ उच्च मध्यवर्गीय हिन्दू निवास कर रहे हैं। लगभग एक वर्ष पूर्व पण्डित हृदयनाथ कुंजरू के बड़े भाई सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् पण्डित राजनाथ कुंजरू ने मोतीलाल के जन्मस्थान को पहिचानते हुए कहा कि १८५७ में देहली से कितने ही काश्मीरी शरणार्थी आगरे के इसी मुहल्ले में आकर बसे थे।

माईथान में बुल्लन बेगम का कटरा काफी प्रसिद्ध है और इस शताब्दि के प्रारम्भ तक उस पर नेहरू परिवार का अधिकार रहा था। बाद में इसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और लोग इसे भूत-प्रेतों का अड्डा मानकर इसमें निवास करने से डरने लगे। यद्यपि आजकल इस मुगल बेगम की कोठी के आस-पास नये भवनों का निर्माण हो गया है, लेकिन यह कोठी भग्नावशेष के रूप में पं० मोतीलालजी की स्मृति में आज भी विद्यमान है।

आगरा में बसे हुए पुराने काश्मीरी परिवारों में नेहरू परिवार के दिल्ली से रहस्यमय ढंग से गायब होने की घटनाएँ आजकल भी कहानियों के रूप में प्रचलित हैं। दिल्ली में नेहरू

परिवार बाजार सीताराम के काश्तकारी मुहल्ले में अपने पुरखों के मकान में रहता था। राजघराने की शाहजादियों को शरण देने के आरोप में एक दिन ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी ने उनके घर पर छापा मारा और उसे घेर लिया। ब्रिटिश सेना ने माँग की कि राजघराने के व्यक्तियों को उनके सुपुर्द कर दिया जाय। नेहरू परिवार ने इससे साफ इन्कार कर दिया। इस पर परिवार के पुरुषों को पास के नीम के वृक्ष से लटकाकर फाँसी दे देने की धमकी दी गई। न तो नेहरू परिवार ब्रिटिश सेना की आज्ञा के आगे झुका ही और न उसने ब्रिटिश सेना को अपनी गिरफ्तारी का अवसर ही दिया। ब्रिटिश शासकों के क्रोध से बचने के लिए वे साहसिक एवं रहस्यमय ढंग से दिल्ली के अपने पुरखों के मकान को छोड़कर भाग निकले। पण्डित मोहनलाल के साथ परिवार के कुछ सदस्य पंजाब चले गये और अम्बाला में जाकर बस गये। कोतवाल श्री गंगाधर नेहरू आगरा आकर बस गये।

आगरा आते समय श्री गंगाधर नेहरू को कितनी ही दिक्कतों एवं असुविधाओं का सामना करना पड़ा और कितने ही ऐसे क्षण आये, जब उन्हें मृत्यु एवं जीवन के बीच जोरदार संघर्ष करना पड़ा। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी "आत्म-कथा" में इन अविस्मरणीय घटनाओं का निम्न शब्दों में उल्लेख किया है—

१८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने दिल्ली से हमारे परिवार का सम्बन्ध विच्छेद कर दिया और हमारे परिवार के

प्राचीन दस्तावेज एवं महत्वपूर्ण कागज इत्यादि इस दौरान में सब नष्ट कर दिये गये। अपनी सारी चीजों से हाथ धोकर परिवार को एक शरणार्थी परिवार के रूप में प्राचीन शाही नगर देहली से भागकर आगरा में शरण लेनी पड़ी। मेरे पिता का जन्म उस समय तक नहीं हुआ था, लेकिन उनसे दो बड़े भाई उस समय नौजवान थे और उन्हें अंग्रेजी का भी कुछ ज्ञान था। अंग्रेजी का यह ज्ञान परिवार के कई सदस्यों की जान बचाने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। एक बार पिताजी से बड़े भाई परिवार के कुछ सदस्यों के साथ रेल से यात्रा कर रहे थे। परिवार के सदस्यों में उनकी छोटी बहिन भी थी। वह काफी खूबसूरत थी, जैसेकि काश्मीरी बच्चे अक्सर होते हैं। कुछ अंग्रेज सैनिकों ने उन्हें अंग्रेज लड़की समझा और यह सन्देह किया कि पिताजी के बड़े भाई उन्हें भगा कर ले जा रहे हैं। वे ब्रिटिश साम्राज्य के आतंक के दिन थे और उन दिनों किसी के विरुद्ध आरोप लगाना, अपराध साबित करना और सजा देना कुछ ही क्षणों का कार्य था। पिताजी के बड़े भाई को परिवार के अन्य सदस्यों के साथ कुछ ही समय में किसी वृक्ष से लटकाकर फांसी दे दी गई होती, यदि उनका अंग्रेजी का ज्ञान मामले को थोड़ी देर साधे न रहता। सौभाग्यवश उसी समय उनकी जान-पहचान के एक व्यक्ति उधर से आ निकले और उन्होंने उन्हें उन निर्दय ब्रिटिश सैनिकों के शिकंजे से छुड़ाया।

श्री गंगाधर नेहरू की मृत्यु

इन भारी दिक्कतों के बीच नेहरू परिवार को दुर्दैव का

उस समय जबर्दस्त धक्का लगा, जब परिवार के संरक्षक श्री गंगाधर नेहरू एक बड़ा परिवार छोड़कर इस दुनिया से बिदा हो गये। परिवार के सब से ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण दिनों में मोतीलालजी का जन्म पिता की मृत्यु के बाद हुआ। पिता तीन महीने पहले ही चिर निद्रा में सो चुके थे।

परिवार के पास एक चित्र है जिसमें मोतीलालजी के पिता मुगल कोर्ट की दरबारी पोशाक पहने हाथ में तलवार लिये हुए खड़े हैं और बिलकुल मुगल सामन्त के समान लगते हैं, यद्यपि उनके चेहरे-मोहरे से काश्मीरीपन साफ झलकता है।

मोतीलालजी ने अपना बाल्यकाल अपने बड़े भाई नन्दलाल नेहरू के संरक्षण में बिताया। ये राजपूताना की खेतड़ी स्टेट में दीवान थे, लेकिन बाद में आगरा आकर बस गये थे और वकालत करने लगे थे।

मोतीलालजी की माता अपने दृढ़ स्वभाव एवं अभूतपूर्व इच्छा-शक्ति के कारण आगरा के काश्मीरी परिवार की महिलाओं में आज भी श्रद्धापूर्वक याद की जाती हैं। अपने स्वभाव में वे इतनी दृढ़ थीं कि कोई उनकी उपेक्षा करने की हिम्मत नहीं कर सकता था। तीन-चौथाई शताब्दि निकल जाने के बाद भी उनके व्यक्तित्व की छाप अब भी स्पष्ट रूप से नेहरू परिवार पर देखी जा सकती है। अपनी इच्छा की अवहेलना पर वे अत्यन्त ही उग्र रूप धारण कर लेती थीं।

मोतीलालजी के हृदय में अपने भाई नन्दलाल नेहरू के लिए अपूर्व श्रद्धा, भक्ति एवं निष्ठा थी और नन्दलाल नेहरू भी

मोतीलालजी को अपने पुत्र के समान ही समझते थे। उनके आपसी सम्बन्धों में भाई एवं पिता की भावनाओं का अद्वितीय सम्मिश्रण था। चूँकि मोतीलालजी अपने भाइयों में सबसे छोटे थे, अतः स्वभावतः ही अपनी माता का प्रेम उन्हें सबसे ज्यादा मिला।

मुगलों की प्राचीन राजधानी आगरा ब्रिटिश शासन काल में भी भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बना रहा। होली के त्यौहार के बाद प्रत्येक मोहल्ले में मेलों के आयोजन की परिपाटी आज तक चली आती है, जिनमें शहर के प्रतिष्ठित नागरिक एवं नौजवान पूर्ण उत्साह के साथ भाग लेते हैं। पतंग उड़ाना, तैरना, कुश्ती आदि का भी आगरा मुख्य केन्द्र रहा और ये विशेषताएँ आगरा में आज तक विद्यमान हैं। मोतीलालजी ने आगरा की इन खेलों एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में पूरा-पूरा भाग लिया और उनका नेतृत्व भी प्रारम्भ कर दिया। माईथान, जहाँ कि वे रहते थे, इन गतिविधियों का केन्द्र बन गया। पतंगबाजी प्रतियोगिता, दंगल, तैराकी-प्रतियोगिता आदि आज भी आगरा में श्रावण माह में उत्साहपूर्वक आयोजित की जाती हैं, जो कि पिछले समय की एक शानदार यादगार हैं।

माईथान अखाड़े के गुरु ८० वर्षीय कुंजी पाण्डे ने बताया कि किस तरह काश्मीरी लोग पिछले समय में अखाड़ों और दंगल में खूब दिलचस्पी लेते थे। मोतीलालजी के सहयोग का माईथान के अखाड़ों को गौरव प्राप्त है। कुंजी पाण्डे बुल्लन बेगम के कटरे के पास ही रहते हैं, उन्हें अब तक

अच्छी तरह याद है कि उनके बुजुर्ग मोतीलालजी की शारीरिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का जिक्र किया करते थे और कहा करते थे कि मोतीलालजी स्वयं अखाड़े में कुश्तियों का नेतृत्व कया करते थे।

अच्छे स्वास्थ्य का निर्माण करना एवं अच्छे कार्य क प्रसिद्धि प्राप्त करना आगरा की ऐसी विशेषताएँ हैं जो मोती लालजी को आगरा की धरोहर के रूप में मिलीं और ये विशेष-ताएँ उनके चरित्र में अन्तिम समय तक विद्यमान रहीं।

मोतीलालजी की विद्याध्ययन में उतनी दिलचस्पी एवं उत्सुकता नहीं थो जितनी कि खेलों एवं साहसिक कार्य करने में थी। वे एक आदर्श विद्यार्थी नहीं थे। श्री जवाहरलालजी ने अपने पिता के सम्बन्ध में बताते हुए लिखा है कि उनका झुकाव पश्चिमी वेशभूषा और पश्चिमी दृष्टिकोण के प्रति ज्यादा था और वह भी ऐसे समय में जब भारतीयों के लिए ये चीजें बिलकुल नवीन थीं।

अपनी परीक्षाएँ मोतीलालजी ने बिना किसी विशेष सफ-लता के पास कीं। बी० ए० की परीक्षा में उनका पहला पर्चा बिगड़ गया और उससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें अपनी सफलता की आशा न रही और किसी को कुछ बताये बिना उन्होंने बाकी के पर्चे न देने का निश्चय किया। आगरा कालेज के परीक्षा हाल में बैठने के बजाय वे ताजमहल चले जाते थे, जहाँ अमर प्रेम के इस महान् प्रतीक का उनके मस्तिष्क पर बड़ा प्रभाव पड़ा और प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति उनके हृदय में सदैव के लिए स्थान बन गया।

देश के लिये उनका त्याग आज किसी देशवासी से छिपा नहीं है। मोतीलालजी की राष्ट्र के प्रति निष्ठा एवं सेवा तथा देश की स्वतन्त्रता के लिए उनके त्याग के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हुए एक बार राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था—"जवाहरलाल नेहरू भारत को ही नहीं वरन् समूचे विश्व को मोतीलालजी की अनमोल एवं अद्वितीय देन हैं।

———

: ६ :

आगरा की लूट

बाहर से आने वाले पर्यटक जहाँ एक तरफ मुगलकालीन शाही इमारतों को देखकर आश्चर्य चकित रह जाते हैं वहाँ दूसरी तरफ इन भवनों के नष्ट किये जाने तथा समय-समय पर हुई आगरा की लूट की दुःख भरी कहानी सुनकर व्यथित हो जाते हैं। आगरा की जितनी गौरव-गरिमा है उससे कहीं करुणाजनक लूट की कहानी है।

आगरा को यह गौरव प्राप्त है कि अकबर महान् के पूर्व सिकन्दर लोदी के समय से शाहजहाँ बादशाह के राज्य काल के अन्त तक यह मुगल साम्राज्य की राजधानी रहा। यद्यपि अन्तिम समय में शाहजहाँ ने राजधानी दिल्ली बना दी, तथापि ताज के कारण उसका दिल आगरा में बना रहा। बाद में औरंगजेब के समय में भी सभी राजनीतिक एवं कूटनीतिक कार्य आगरा में ही हुए। आगरा मुगल साम्राज्य की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में अन्तिम समय तक प्रसिद्ध रहा।

मुगल साम्राज्य का सबसे धनी नगर

डा० जदुनाथ सरकार के शब्दों में आगरा मुगल साम्राज्य

का सबसे धनी नगर था। मुगल साम्राज्य का खजाना अकबर के समय से बराबर आगरा के किले में एकत्रित होता रहा। हालांकि औरंगजेब के समय में लम्बी लड़ाइयों के कारण तथा उसके वशंजों के दिवालियेपन के कारण आगरा का खजाना काफी खाली हुआ, तब भी यहाँ काफी सामान था। विशेषकर कीमती पोशाकें, शाही बर्तन, जवाहरात आदि, जो कई बादशाहों के लिए पर्याप्त थे।

मुगल शासकों को रत्नों का शौक था। हुमायूँ ने स्वयं ग्वालियर के राजा विक्रमाजीत से संसार प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा प्राप्त किया था। अकबर के पास जवाहरात का बेशकीमती खजाना था। उसके पास दो लड़ी की मोती की माला थी, जिसकी कीमत करीब १०,००,००० रु० थी। जहाँगीर को काफी तादाद में रत्न अकबर से प्राप्त हुए थे जिसमें डेढ़ मन का हीरों का खजाना था, १२ मन के मोती तथा अन्य अमूल्य पन्ने, लाल आदि रत्नों के मनों ढेर थे। शाहजहाँ को भी जवाहरात का बेहद शौक था। उसकी निजी सम्पत्ति में ५ करोड़ का केवल इन चीजों का खजाना था। इसके अलावा दो करोड़ के जवाहरात शाही परिवार के पास थे।

मुमताजमहल की रत्नजटित चादर की लूट

आगे डा० जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि आगरा किला, जिसमें यह सब सम्पत्ति रखी हुई थी, किसी बाहरी आक्रमणकारी की पहुँच के बाहर था। उसके दरवाजे दुर्रानी आक्रमण-

कारियों के समय में भी नहीं खुले। राजधानी दिल्ली से भाग कर धनी-मानी व्यक्ति आगरे आये। उस संकटकालीन स्थिति में जबकि मुगल साम्राज्य के पतन के बाद बराबर आक्रमण हो रहे थे, तब आगरा ही उत्तरी भारत में व्यापार का एकमात्र सबसे उपयुक्त केन्द्र शेष था।

वैसे तो सामूगढ़ की लड़ाई में हारने के बाद रातों-रात दाराशिकोह आगरा किले से काफी सम्पत्ति लूटकर भागा था, लेकिन मुगल साम्राज्य के पतन के दौरान में आगरा किले की लूट सबसे पहले इतिहास प्रसिद्ध सैयद भाइयों ने की। आगरा गजेटियर के अनुसार सैयद भाइयों ने आगरा किले में एकत्रित खजाने की लूट की, जिसमें नूरजहाँ की सम्पत्ति एवं मुमताजमहल की रत्न जटित चादर भी शामिल थी, जो उसकी कब्र पर प्रत्येक शुक्रवार को व उर्स पर बिछाई जाती थी।

जाटों की लूट की कहानी—अंग्रेजी चाल

जाटों द्वारा आगरा किले, सिकन्दरे तथा अन्य ऐतिहासिक इमारतों के लूटे जाने का वर्णन जगह-जगह मिलता है। यह सही है कि आगरा किले की अमूल्य इमारतों को लूट कर डीग के महल जाटों ने बनवाये और सिकन्दरे वगैरह को भी काफी क्षति पहुँचाई, परन्तु जाटों द्वारा लूट की कहानी के पीछे अंग्रेजों के कारनामों को छिपाने की भी कोशिश है। इन्होंने स्वयं आगरा की बहुतसी शाही इमारतों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

सन् १८०३ में लार्ड लेक ने आगरा किले पर कब्जा किया। इससे पूर्व मराठों के अधीन आगरा पर फ्रान्सीसी जनरल पेरा

व डच गवर्नर हेसिंग का अधिकार था । इन सब योरोपियनों ने जिनमें जर्मन वाल्टर रेनार्ट भी था, आगरा की लूट कायम रखी । पेंरां हारने के बाद भी आगरे के किले के खजाने से १२ लाख रुपये का दावा करता रहा ।

जब अंग्रेजों ने आगरा किले पर अधिकार किया, तब उनको आगरा गजेटियर के अनुसार आगरा किले से १६४ तोपों के साथ काफी गोला-बारूद तथा खजाना मिला ।

आगरा की तोप

इस दौरान में अंग्रेजों को एक तोप भी मिली, जिसका वज़न ४३ टन था । इसको आगरा की तोप कहते थे जिसका नाम रूपरानी था । इसके गोले का वज़न डेढ़ हजार पौण्ड होता था ।

आमतौर पर यह विश्वास किया जाता था कि यह जगत प्रसिद्ध तोप मूल्यवान पदार्थों से बनी हैं । स्थानीय व्यक्तियों ने इस तोप को अंग्रेजों से खरीदने की कोशिश की । उन्होंने उसकी कीमत एक लाख रुपये तक लगा दी । आगरा गजेटियर के अनुसार लार्ड लेक रूपरानी को आगरा जीतने की खुशी में इंग्लैण्ड ले जाना चाहता था । एक नाव में रख-कर वह तोप जमुना के सहारे ले जाई भी गई, लेकिन नाव के फँस जाने के कारण वह तोप आगरा के निकट डूब गई । यह कहीं बालू में दबी पड़ी है ।

एक ओर आगरा गजेटियर में रूपरानी के जमुना में डूबने की बात है; दूसरी ओर 'मेरठ आब्जरवर' नामक अँग्रेजी अख-

बार ने लिखा कि आगरे की तोप की जाँच के लिए कलकत्ते से एक अफसर आया, ताकि यह पता लगाया जाय कि उसमें कितना किस प्रकार का पदार्थ है। यह पता लगने के बाद आगरा किले के सामने वाले मैदान में बारूद भर कर तोप को उड़ाया गया। जब रूपरानी को बारूद भर कर उड़ाया जा रहा था तब 'मेरठ आब्जरवर' के कथनानुसार आगरा शहर की आधी आबादी भय और बर्बादी की आशंका से नगर छोड़कर भाग गई थी।

अँग्रेजों द्वारा खुली लूट : ताज नष्ट करने का कुचक्र

आगरा गजेटियर के अनुसार सन् १८१३ और १८२० में भारत के अंग्रेज वायसराय लार्ड हेस्टिंग्स ने ऐतिहासिक किले के शाही हमामों को तुड़वाकर बेशकीमती पत्थर इंगलैण्ड भिजवा दिये, ताकि शाही शाहजादे की भेंट किये जा सकें।

सन् १८१२ और सन् १८२८ के लगभग फिर लार्ड बेंटिक ने मच्छी भवन की इमारत को तुड़वाकर उसके संगमरमर के पत्थरों को निकलवा कर नीलाम कर दिया।

इतिहासकारों का मत है और विशेषकर कर्नल स्लीमन नामक अंग्रेज अफसर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि लार्ड विलियम बेंटिक ताजमहल के संगमरमर के पत्थरों को बिकवा कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का खजाना भरना चाहता था। फलस्वरूप मच्छी भवन के संगमरकर निकलवाकर आगरा के पी० डब्लू० वर्क्स डिपार्टमेंट के कार्यालय में नीलाम हुए, लेकिन उनके खरीददार इतने कम थे और इतने कम दाम पर देने वाले निकले कि यह योजना सफल न हो सकी। यदि अंग्रेजों

की यह शैतानी योजना सफल हो गई होती तो आज विश्व-विख्यात ताजमहल केवल खण्डहर मात्र रह जाता।

बाद में अंग्रेजों ने ताजमहल को बेचने की ठानी और इस आशय का एक विज्ञापन कलकत्ते के पत्र 'जान बुल' में प्रकाशित भी हुआ, लेकिन सौभाग्यवश किसी की हिम्मत ताजमहल खरीदने की नहीं हुई।

आगरा की इमारतों का धराशायी किया जाना

अंग्रेजों ने आगरा की इमारतों को एक निश्चित योजना के अनुसार नष्ट-भ्रष्ट किया। सबसे पहले आगरा किले की आधी से ज्यादा इमारतें तुड़वा दी गईं। इस इलाके में अब सेना रहती है। अबुलफजल के अनुसार यहाँ पर ५०० आलीशान भवन थे, जिनको बंगाल, गुजरात और अन्य क्षेत्रों के कारीगरों ने बनाया था।

सबसे पहले उन्होंने इमारतों को तुड़वाया और जानबूझ कर नष्ट कराया। ऐसी शाही इमारतों में सबसे प्रमुख शाहगंज स्थित जहाँगीर की माँ जोधाबाई का मकबरा था, जिसको बारूद लगाकर उड़ा दिया गया और बाद में सारा सामान अंग्रेज उठाकर ले आये। उनके जंगलीपन की हद यहीं तक न रही, बल्कि यहाँ के सामान को छावनी के इलाके की बारकों में लगाया गया।

इसी प्रकार कचहरी घाट स्थित आसफखाँ की हवेली को अंग्रेजों ने सन् १८५७ में बारूद लगाकर उड़ा दिया; क्योंकि भय था कि देशभक्त वहाँ आश्रय प्राप्त न कर सकें।

लूट का परिणाम : भुखमरी और अकाल

अन्य इमारतों को सीधे-सीधे नीलाम कर दिया, जिससे वे तुड़वाकर ढेर कर दी गईं। ऐसी इमारतों में लाड़ली बेगम का मकबरा प्रसिद्ध है, जहाँ पर अबुल फजल तथा उनके पिता की कब्रें थीं।

अंग्रेजों द्वारा आगरा की लूट एवं शोषण का यह फल निकला कि आगरा पर एक के बाद एक भयानक अकाल पड़ने लगे। जिस शहर की आबादी अकबर के जमाने में २ लाख से अधिक थी वह अंग्रेजों के ३५ वर्ष की लूट के बाद सन् १८३८ में ३५,००० रह गई।

कलकत्ता व आगरा के गजेटियर के लेखक ने उस समय का वर्णन इस प्रकार किया है—मुगलकालीन आगरा का क्षेत्रफल वर्त्तमान आगरा से १० गुना होगा। जो आज जंगल और खेत दिखाई देते हैं, उन पर एक जमाने में आलीशान महल खड़े हुए होंगे। जमुना नदी के दोनों किनारों पर ताज से लेकर किले तक खास-खास महल रहे होंगे।

"आज यहाँ पेशेवर भिखारी हैं, जो खास तौर पर मुसलमान हैं। बहुत कम धनी-मानी व्यक्ति नजर आते हैं और जो हैं भी वह आगरे के बाहर के हैं।"

लूट अब भी जारी है

अंग्रेजों के चले जाने के बावजूद भी आगरा की लूट कायम है। आगरा किले के शाही महलों से कीमती पत्थर गायब हो रहे हैं। ताजमहल को नष्ट करने की गुप्त योजनाएँ अम-

रीकी एजेण्टों द्वारा बनाई जाती हैं। यहाँ से भी अमूल्य पत्थरों का निकलना जारी है।

आगरा के व्यवसाय चौपट हैं। कारखानों में लगी हुई पूँजी आगरा से बाहर जा चुकी है। उद्योग-धन्धे नष्ट हैं। आगरा की लूट का एतिहासिक क्रम जारी है।

———

: १० :

आगरा की संस्कृति

क्या ताज की नगरी आगरा का भी अपना कलचर है ? और उसकी कोई विशेष संस्कृति है। इस विषय पर मत देते हुए एक अंगरेज लेफ्टीनेण्ट-गवर्नर ने लिखा था कि आगरा में रहने पर वर्त्तमान से अधिक पुराने जमाने में रहने का प्रलोभन हो आता है। बाहर से आने वाले लाखों पर्यटक आगरा की मुगलकालीन इमारतें, यहाँ की कला-कौशल एवं प्राचीन कलचर की छाप लेकर जाते हैं। उनको भी वर्त्तमान आगरा से कहीं अधिक पुराने मुगलकालीन अकबराबाद के वैभव की दाद देनी पड़ती है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

आगरा नगर ऐतिहासिक नगर है, जिसका विकास एवं पतन मुगल सल्तनत के साथ हुआ। लेकिन किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण जहाँ अन्य राजधानियों की विशेष संस्कृति नष्ट प्रायः हो गई, आगरा का कलचर अब भी कायम है। यदाकदा यह अब भी प्रदर्शित होता है।

अकबर से पूर्व सिकन्दर लोदी के जमाने में आगरा मुस्लिम शिक्षा का केन्द्र रहा और अकबर के काल से फारसी भाषा

एवं साहित्य का प्रमुख स्थान रहा। मध्य एशिया और विशेषकर फारस के कवि एवं साहित्यिक आगरा आये। उन्होंने न केवल फारसी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाया बल्कि जीवन के दर्शन और धार्मिक विचारों पर प्रभाव डाला, और ब्रज-फारसी कला का सामंजस्य आगरा में हुआ, जो देश के सांस्कृतिक उत्थान में ऐतिहासिक घटना है।

दिल्ली और आगरा

आगरा केवल राजनीतिक एवं सामरिक महत्व का ही केन्द्र न था, बल्कि सांस्कृतिक व साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण था। अकबर के दरबारी अबुल फजल ने लिखा है, "आगरा बड़ा शहर है, जिसकी आबोहवा खुशनमा है।" शहर के बारे में अंग्रेज यात्री राल्फफिच ने विस्तार से लिखा है, "आगरा नगर घनी आबादी वाला बड़ा नगर है जोकि पत्थरों से बना है और जिसकी लम्बी चौड़ी सड़कें हैं।" प्रसिद्ध फ्रांसीसी यात्री बर्नियर जो शाहजहाँ के काल में था, आगरा और दिल्ली की तुलना करते हुए वर्णन करता है कि आगरा और दिल्ली में विशेष अन्तर नहीं है। यदि ऊँचाई से देखा जाय तो आगरा देहाती नगर सा मालूम पड़ेगा। आगरा का देहाती नगरसा लगना कोई बुराई की बात नहीं है। इसके विपरीत यह इस नगर की एक विशेषता है, क्योंकि राजाओं और नवाबों ने अपने महलों के आगे बड़े-बड़े बाग लगवा दिये हैं जिससे नगर की शोभा अत्यन्त मनोहर हो गई है।

"दुनिया में अत्यन्त मोहक एवं लुभावने स्थान की खोज

के लिए पेरिस (फ्रांस की राजधानी) के बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। यहाँ पर तुम्हें कुछ ही कदम चलने की जरूरत है, जहाँ दिन में अजब किस्म का नज्जारा दिखाई देगा और रात में महलों की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से जगमगाती रोशनी की झिलमिलाइट आँखों को चकाचौंध कर देगी। आधी रात गये तक सम्भ्रान्त महिलाएँ बिना किसी भय के तथा लुटेरों के आतंक के, धूल और मिट्टी की परेशानी से परे, आनन्द से विचरती हुई जमुना के किनारे मिलेंगी।"

स्थापत्य कला

देश को आगरा की सबसे प्रमुख देन स्थापत्य कला के सम्बन्ध में रही है, जो अद्वितीय है। नगर के चारों तरफ लाल पत्थर व संगमरमर की भव्य इमारतें खड़ी हैं, वे भारत में स्थापत्य कला के चरम विकास की द्योतक हैं। ये इमारतें कभी-कभी हिन्दू-मुस्लिम तथा इण्डो-सारसनिक कला की बताई जाती हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि आगरे में अकबर के जमाने में हिन्दू-मुस्लिम सम्मिश्रण का यह अद्भुत परिणाम है। इतिहासकारों की राय में यह सम्मिश्रण आगरे की इमारतों में इतना पूर्ण है कि और कहीं यह नहीं मिलता। इसलिए आगरा राष्ट्रीय स्थापत्य की उत्पत्ति का केन्द्र समझा जाता है। आज भी भवन-निर्माण की समस्या आती है, तब आगरा की शाही इमारतों के न केवल डिजाइन काम में आते हैं, बल्कि एक अमरीकन विशेषज्ञ के अनुसार उचित रोशनी आदि के प्रबन्ध के लिए इन इमारतों मे काफी सीखा जा सकता है।

संगीत

आगरा का स्थान भारतीय संगीत में प्रमुख रहा है। इस सम्बन्ध में देश के प्रसिद्ध गायक एवं संगीतशास्त्री श्री एस० के० चौबे ने एक लेख में लिखा है, "आगरा दो वस्तुओं के लिए प्रख्यात है--एक तो ताजमहल और दूसरे आगरा घराने की गायकी।"

आगरा घराने की गायकी उच्च स्तरीय कलात्मक राग-रागनियों के लिए प्रख्यात है। तानसेन के जमाने से आगरा संगीत का केन्द्र रहा है। आगरा गायकी के प्रतिपादक हाजी-सुजान खाँ तानसेन के सम्बन्धी थे और बाद में इनके वंशज घेघ खुदाबक्श हुए जो वर्त्तमान ध्रुपद के निर्माता बहराम खाँ के मित्र एवं समकालीन थे। इस घराने के प्रमुख गवैयों में गुलाम अब्बास खाँ, कल्लन खाँ, नथन खाँ, अब्दुल खाँ, आदि थे। बाद मे भास्कर राव व उस्ताद फैयाज खाँ हुए। उस्ताद फैयाज खाँ 'आफताबे मुसीकी' अर्थात 'संगीत के सूर्य' की उपाधि से विभूषित किये गये। आज दिलीपचन्द वेदी और श्री एस० एन० रतनजंकर आगरा घराने के प्रमुख गायकों में से हैं। आज भी संगीत समारोह में आगरा घराने की गायकी प्रमुख स्थान पाती है, जो आगरा कलचर की भारत को अद्वितीय देन है।

साहित्य

स्थापत्य और संगीत के समान भारतीय साहित्य में भी आगरे का विशेष स्थान रहा है।

उर्दू साहित्य में गजल की परम्परा आगरे से पड़ी। यहीं

के मीर तकी 'मीर' गजल को लेकर दिल्ली और लखनऊ ले गये। यहीं के जनाब गालिब साहब ने दिल्ली जाकर उर्दू साहित्य में ही नहीं, बल्कि समूचे साहित्यिक नक्षत्र में अपना सिक्का जमाया। मियाँ नजीर अकबराबादी अपनी वाणी और कलाम से सबसे पहले हिन्दुस्तानी कवि कहलाये। सूरदास ने आगरे से सात मील दूरी पर रेणुका क्षेत्र के पास गऊघाट पर रचना की। बाद में कविता की सरिता ब्रज कोकिल स्व पं० सत्य-नारायण कविरत्न तथा सीमाब अकबराबादी की रचनाओं से प्रस्फुटित हुई और इसने सही मानों में राष्ट्रीय रूप को अपनाया। ब्रज की भूमि का आगरा पर ऐसा असर पड़ा कि जो कोई यहाँ आया काव्यधारा से अछूता नहीं रहा। आर्मीनिआई सिपहसालार मिर्जा जुलकर नैन ने भी यहाँ के वातावरण में कविता की।



रेणुका क्षेत्र स्थित सूर कुटी

आगरा के साहित्य के सम्बन्ध में गजेटियर लिखता है कि जिले में साहित्य का भण्डार है। अकबर के जमाने में फैजी ने आगरा में उर्दू साहित्य का इतना सृजन किया जितना कि दिल्ली के अमीर खुसरो के अलावा अन्य किसी ने नहीं किया। अबुल फजल का नौकर असरबेग साहित्यकार था, जिसने बिकाया

नामक पुस्तिका लिखी। १६वीं शताब्दी के बाद नजीर नामक शायर हुआ जिसकी रचनाएँ काफी प्रख्यात हुईं। यद्यपि १८ वीं शताब्दी में साहित्यिक गतिविधियों में कुछ कमी आ गई, तथापि इस काल में सुरति मिश्र नामक कवि हुए जिन्होंने मुहम्मद शाह के जमाने में 'सरस रस' और 'बेताल पच्चीसी' नामक ग्रन्थ लिखे। १९वीं शताब्दी में मोहम्मद बख्स ताजगंज के प्रसिद्ध कवि हुए हैं, जो गायक भी थे। इनकी ब्रज भाषा की कविताएँ सबकी जुबान पर थीं। बाद में मीर कासिम ने अफगान युद्ध का इतिहास लिखा। अनुवादकर्त्ता भी आगरे में हुए जिनमें प्रमुख मीर आजमअली थे जिन्होंने निजामी के 'सिकन्दर नामा' का अनुवाद किया। लल्लूलालजी ने कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में प्रेम सागर पुस्तक की रचना को जो हिन्दी भाषा की प्रथम पुस्तक मानी जाती है। दीवान बिहारीलाल जी ने शेख सादी के गुलिस्ताँ और बोस्ताँ का अनुवाद किया।



ब्रज-कोकिल पं० सत्यनारायण का जन्म-स्थान

अंग्रेजों की नीति व आगरे का सांस्कृतिक पतन

मुगलकालीन साम्राज्य के पतन के बाद और अंग्रेजों के

राज्य के बाद आगरा की तबाही शुरू हुई। इसका विशेष कारण था। आगरा सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण देश के ऐश्वर्य, समृद्धि एवं प्राचीन वैभव का प्रतीक था। प्रारम्भ में अंग्रेज शासक आगरे के इस रूप को नष्ट करने में व्यस्त थे। एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार आगरे की खास-खास इमारतों को तबाह किया गया, यहाँ तक कि ताजमहल को नष्ट करने की भी योजना बना ली गई। गनीमत है कि यह योजना पूरी तौर पर सफल नहीं हुई अन्यथा आज या तो ताजमहल किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति होता या खण्डहर के रूप में टीला बन कर अपने पुराने चिरस्मरणीय वैभव की याद दिलाता रहता।

अँग्रेजों की इस नीति का नतीजा बेकारी, भुखमरी, अकाल और महामारी के रूप में सामने आया। एक के बाद एक अकाल पड़ते रहे।

गजेटियर के कथनानुसार "आगरा में धनी मानी व्यक्तियों का पूर्ण अभाव है और जो व्यापारी हैं, वे भी बाहर से आये हुए हैं। नगर में किसी भी प्रकार का व्यवसाय नहीं है। यहाँ पेशेवर भिखमंगों का गिरोह है जो खास तौर पर मुसलमान हैं। यह लोग शाहगंज के आस-पास रहते हैं।"

आगरा की मुसीबतों की कहानी मियाँ नजीर की प्रसिद्ध नज्म 'शह्र अशोब' में मिलती है जिसमें इस जगत-प्रसिद्ध नगरी के कलचर के नष्ट किए जाने का रोमांचकारी दृश्य सामने आता है।

जितने हैं आज
आगरे में कारखानाजात,
सब पर पड़ी है आन के
रोजी की मुश्किलात।



जन कवि नजीर

किस-किस के दुख को रोइए
और किस-किस की कहिए बात

रोजी के अब दरख्त का
हिलता नहीं है पात।
ऐसी हवा कुछ आके
हुई एक बार बन्द।

खेल-तमाशे

यद्यपि यही बात आज भी आगरा के ऊपर लागू होती है, तथापि आगरा तबाह नहीं हुआ है। ताजमहल व अन्य विश्व-विख्यात इमारतों के कारण जहाँ आगरा दुनिया में पर्यटक केन्द्र के नाते प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है, वहाँ दूसरी ओर सांस्कृतिक जनसमारोहों के कारण अपना क्षेत्रीय महत्त्व कायम किये हुए है।

आगरा के मेले मशहूर हैं। ये पूर्णतया धार्मिक होते हुए भी सांस्कृतिक रूप अपनाये हुए हैं और हिन्दू-मुसलिम एकता के प्रतीक हैं। इसमें कैलाश, सिकन्दरा व तैराकी का मेला मुख्य हैं। इन मेलों में हजारों की तादाद में हिन्दू-मुसलिम नर-नारी, गरीब-अमीर भाग लेते हैं। वर्ष में नगर के चारों तरफ इस प्रकार के मेलों की धूम रहती है। तैराकी के मेले का वर्णन करते हुए मियाँ नजीर ने लिखा है—

जब पैरने की रुत में
दिलवार पैरते हैं,
आशिक भी साथ उनके
गमख्वार पैरते हैं,
भोले, सयाने, नादाँ,
हुशियार पैरते हैं;

पीर श्रौ जवान, लड़के
अय्यार पैरते हैं,
अदना, गरीब श्रौ मुफलिस
जरदार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या क्या
ए यार पैरते हैं॥

× × ×

जाते हैं उनमें कितने
पानी पे साफ सोते,
कितनों के हाथ पिंजरे
कितनों के सर पर तोते,
कितने पतंग उड़ाते
कितने सुई पिरोते,
हुक्कों का दम लगाते
हँस-हँस के दाद होते,
सौ-सौ तरह का कर-कर
विस्तार पैरते हैं।
इस आगरे में क्या-क्या
ए यार पैरते हैं॥

× × ×

कुछ नाच की बहारें
पानी के कुछ किनारे,

दरिया में मच रहे हैं
इन्दर के सौ अखाड़े ।

× × ×

नावों में वो जो गुलरु
नाचों में छक रहे हैं,
जोड़े बदन के रंगी
गहने झमक रहे हैं,
तानें हवा में उड़ती
तबले खड़क रहे हैं,
ऐश ओ तरब की
धूमें पानी छपक रहे हैं,
सौ ठाठ के बनाकर
अतवार पैरते हैं ।
इस आगरे में क्या क्या
ए यार पैरते हैं ।।

मुशायरे

तैराकी, पतंगबाजी के मेले, होली, दीवाली के त्यौहार सब, हिन्दू-मुसलमानों के लिए थे जो मिलकर मनाये जाते थे । इस प्रकार आगरा में कवि गोष्ठी व मुशायरे भी हुआ करते थे । आगरा के मुशायरे में ही मीर तकी 'मीर' ने गालिब के लिए कहा था कि यदि सही उस्ताद मिला तो यह नाम रोशन करेगा ।

आगरा में मुशायरे की धूम रहती थी । काशी नरेश राजा

चेतसिंह के सुपुत्र राजा बलवानसिंह के सेव का बाजार स्थित महल में १६ अक्टूबर, १८६६ को एक मुशायरा हुआ, जिसमें मियाँ नजीर अकबराबादी के सुपुत्र खलीफा गुलजार अलीखाँ असीर एक तरफ और मिर्जा हातिमअली मेहर दूसरी तरफ विराजमान थे। दोनों साहबों के आगे चाँदी का हुक्का गर्मा रहा था। इसी दौरान में खलीफा गुलजार अलीखाँ असीर ने एक शेर पढ़कर सुनाया, सारी महफिल में कहकहा मच गया। किसी मनचले ने एक अशर्फी निकालकर सरेमहफिल असीर साहब को भेंट की। इस पर असीर साहब ने कहा, "अभी एक शेर बाकी है। मुलाहिजा फरमाइए—



सब ठाठ धरा रह जायगा, जब लाद चलेगा बनजारा

"सिफल ने जर हथेली पर
रखकर दिया तो क्या
चलती है मुट्ठी अहले करम
की बँधी हुई।"

बात करने का ढंग देखिए—ये है आगरा कलचर का नमूना! आगरा ने अपनी परम्परा को छोड़ा नहीं है। यहाँ

की इमारतें, खेल-तमाशे, मेले-ठेले इसके प्रतीक हैं। मुशायरे और कवि गोष्ठियाँ सब एक रंग में होती हैं और वह उस समन्वयवाद की प्रतीक है जिसको आज से चार सौ वर्ष पूर्व अकबर ने इसी लाल किले में अपनाया था और जिसका आगरा कलचर प्रतिपादक एवं हामी है।
